* विनय *

शंकर पिता प्रतापी, कविराज तेज तेरा।
पाकर करे उजाला, अनुरागरत्न मेरा॥

शङ्कर।

ओ३म्

अनुरागरत्न

अर्थात्

वैदिकसिद्धान्त सम्पन्न

आर्य्य भाषा का एक पद्यात्मक
अपूर्व ग्रन्थ

पं० नाथूराम शङ्कर शर्म्मा (शङ्कर),
प्रणीत

हरिशंकर शर्म्मा, द्वारा प्रकाशित

पं० ब्रज वल्लभ मिश्र के वल्लभ प्रेस,
अलीगढ़ में मुद्रित।

प्रथमावृत्ति ३११५ प्रतियां | संवत् १९७० सन् १९१३ ई० | मूल्य १), डाकव्यय पृथक्

विनय-निवेदन

(किसी ने क्या ही अच्छा कहा है):-

"दृष्टं किमपि लोकेऽस्मिन्, निर्दोषं न च निर्गुणम्"

(काव्यलक्षण)

"काव्यं रसात्मकं वाक्यं"

"तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथञ्चन"

एकोहि दोषो गुणसन्निपाते । निमज्जतीन्दोःकिरणेष्विवाङ्कः ॥

(बस यही एक सहारे की बात है)

(काव्य के भेद)

ध्वनि १=व्यंग्य प्रधान उत्तम काव्य *गुणीभूत व्यंग्य २=व्यंग्य अप्रधान मध्यम काव्य * साधारण ३=अवरवाच्य जिस काव्य में व्यंग्य न होने पर भी चमत्कार हो ।

(काव्य के अङ्ग)

छन्द १=मात्रिक १ वर्णिक २ मुक्तक ३ *अलङ्कार २=शब्दालङ्कार १ अर्थालङ्कार २ उभयालङ्कार ३ *विभाव ३=आलम्बन १ उद्दीपन २* अनुभाव ४=सात्विक १ कायिक २ मानसिक ३* स्थायीभाव ५=रति १ हास २ शोक ३ क्रोध ४ उत्साह ५ भय ६ ग्लानि ७ आश्चर्य ८ निर्वेद ९ * संचारीभाव ६= निर्वेद १ ग्लानि २ शंका ३ असूया ४ श्रम ५ मद ६ धृति ७ आलस्य ८ विषाद ९ मति १० चिन्ता ११ मोह १२ स्वप्न १३ विबोध १४ स्मृति १५ अमर्ष १६ गर्व १७ उत्सुकता १८ अवहित्थ १९ दीनता २० हर्ष २१ व्रीडा २२ उग्रता २३ निद्रा २४ व्याधि २५ मरण २६ अपस्मार २७ आवेग २८ त्रास २९ उन्माद ३० जड़ता ३१ चपलता ३२ वितर्क ३३ * व्यंग्य ७=व्यञ्जना शाब्दी १ आर्थी २ *

रस ८ = श्रृंगार १ हास्य २ करुण ३ रौद्र ४ वीर ५ भयानक ६ अद्भुत ७ वीभत्स ८ शान्त ९ ✻ शब्द ९ = वाचक १ लक्षक २ व्यञ्जक ३ ✻ अर्थ १० = वाच्यार्थ १ लक्ष्यार्थ २ व्यंग्यार्थ ३ (अर्थ असंख्य हैं)

(शक्ति)

अभिधाशक्ति१ = वाचक शब्द से वाच्यार्थ का बोधकरानेवाली१
लक्षणाशक्ति२ = लक्षक शब्द से लक्ष्यार्थ को जतानेवाली २
व्यञ्जनाशक्ति३ = व्यञ्जक शब्द से व्यंग्यार्थ को प्रकट करनेवाली ३

(काव्य दोष)

शब्ददोष१ = कर्णकटु १ भाषाहीन २ अप्रयुक्त ३ असमर्थ ४ निहतार्थ ५ अनुचितार्थ ६ निरर्थक ७ अवाचक ८ अश्लील ९ ग्राम्य १० अप्रतीत ११ नेयार्थ १२ समास १३ क्लिष्ट १४ विरुद्ध-मतिकृत १५ अगण १६

वाक्यदोष२ = प्रतिकूलाक्षर १ यतिभङ्ग २ विसन्धि ३ न्यूनपद ४ अधिकपद ५ कथितपद ६ प्रक्रम भङ्ग ७

अर्थदोष३ = अपुष्टार्थ १ कष्टार्थ २ व्याहत ३ पुनरुक्ति ४ संदिग्ध ५ साकांक्षा ६ विरुद्ध

रसदोष४ = प्रत्यनीक १ विरस २ रसविरुद्ध ३ अमतपरार्थ ४ रसहीन ५

इत्याद्यनेक नियमानुसार सुकवि-समाज-निर्मित सत्काव्य निकलतेथे, निकलते हैं और निकलेंगे, परन्तु मुझ महातुच्छ मूढ़ मनुष्य की साधारण पद्यरचना सुप्रसिद्ध-रससिद्ध-कविकुल रचित विशुद्धकविता की बराबरी कदापि नहीं करसकती तोभी यह "अनुरागरत्न" बहुत कुछ विचार पूर्वक रचा गया है ।

(इति) कविकुल किङ्कर,

शङ्कर ।

ओ३म् ॥

समर्पण

श्रीमन्महोदय, साहित्य–विद्याविशारद, काव्य–कानन-केसरी, **पण्डित पद्मसिंहजी शर्म्मा**, सम्पादक, "भारतोदय" मंत्री, आर्य्यविद्वत्सभा।

भगवन्! जिसको (कविता पर प्रसन्न होकर) श्रीमती महा विद्यालय सभाने (आर्य्य विद्वत्सभा द्वारा) वह स्वर्ण पदक प्रदान किया है जिस पर आपका विश्व विख्यात नाम तथा यह श्लोक अंकित है:—

"कविता कामिनी कान्तः, श्रीनाथूराम शंकरः।
[illegible] विदुषां, [illegible]" ॥

वही कवि कुल किंकर नाथूराम शंकर शर्म्मा (शंकर) स्वरचित "अनुरागरत्न" श्रीसेवा में समर्पण करता है। आशा है कि सुदामा के तण्डुलों की भाँति इस महा तुच्छ भेंट से श्रीमान् का कुछ न कुछ मनोरंजन अवश्यही होगा।

(किसी कविने क्याही अच्छा कहा है):—

"[illegible], जानाति विरलोभुवि।
[illegible], मन्तरेण [illegible]॥

सेवक विनीत,

[illegible] शर्म्मा (शंकर),

हरदुआगंज, अलीगढ़।

[* ओ३म् *]

अनुरागरत्न

भूमिकोद्भास

ब्रह्मवन्दनात्मक ब्रह्मोक्ति।

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतरायच ॥ य० अ० १६ मं ४१ ॥

शंकर को शङ्कर का प्रणाम (१)

(शङ्कर–छन्द*)

जो सर्वज्ञ, सुकवि, सुखदाता, विश्व विलास विधाता है ।
जो नव द्रव्य योग उमगाता, शुद्ध एक रस पाता है ॥
अपनाते हैं जिस अक्षर को, क्षणिक रूप, क्षर नाम ।
शंकर! उस प्यारे शंकर को, कर कर जोड़ प्रणाम ॥१॥

---

* (सर्वज्ञ) तत्रनिरतिशयं सर्वज्ञ बीजम् ॥ यो० अ० १ पा० १ सू० २५ ।

(सुकवि) कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः ॥ य० अ० ४० मन्त्रांश ८–

(कवि) यः कौति शब्दयति सर्वाविद्या सकविरीश्वरः–

"स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रियाच"

(श्लोक) नित्यंसर्वगतोह्यात्मा, कूटस्थो दोष वर्जितः
एकः सभिद्यते शक्त्या, माययानस्वभावतः ॥ १ ॥

(मंत्र) यस्मिन्सर्वाणिभूतान्यात्मैवा भूद्विजानतः ।
तत्रको मोहः कः शोक-एकत्वमनुपश्यतः । य० अ० ४० मं० ७

(नवद्रव्य) पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशंकालो दिगात्मामनइतिद्रव्याणि ॥
वै० अ० १ आ० १ सू० ५—
क्रियागुणवत्समवायिकारणमितिद्रव्यलक्षणम् ॥
वै० अ० १ सू० १५

(शंकर) यः शङ्कल्याणं सुखं करोति सशंकरः–

तल्लीनोद्गार (२), दोहा ॥

शंकर स्वामी से मिला, बिछुड़ा शंकर दास ।
भानु प्रभासा छैलका, भिन्नअभिन्नबिलास ॥१॥

गूढार्थ गर्भोक्ति (३) षट्पदी छन्द ।

शंकर सबका ईश, इष्ट मंगल दाता है ।
शंकर के गुण गाय, गाय जी सुख पाता है ॥
शंकर कर कल्याण, योगियों को अपनावे ।
शंकर गौरव रूप, राम से जन जन्मावे ॥
श्री शंकर की प्यारी*उमा, रविसी हरिसी भासती ।
रे शंकर विद्या की वही, मूल शारदा भगवती ॥१॥

(षट्पदी छन्द) यहपद्य शंकर परमात्मा का कीर्त्तन करता हुआ (शंकर) ग्रन्थकार के अविद्यमान पूर्वजों और विद्यमान कौटुम्बिकों के नामों को भी यथाक्रमप्रकट करता है (देखिये, पढ़िये, समझिये)

(१ च०) मंगल+सेन=मंगल सेन (शर्म्मा) बृद्ध प्रपितामह—
(२ च०) जीसुख+राम=जीसुखराम (शर्म्मा) प्रपितामह—
(३ च०) कल्याण+दत्त=कल्याणदत्त (शर्म्मा) पितामह—
(४ च०) गौरवरूप से रूप+राम=रूपराम (शर्म्मा) पिता—

(उपर्य्युक्त महानुभाव इस संसार में नहीं हैं)

(५च०) श्रीशंकर की प्यारी=शंकरा अर्थात् धर्म पत्नी
उमा+शंकर=उमा शङ्कर प्रथम ज्येष्ठ पुत्र —
रवि+शंकर=रविशङ्कर द्वितीय २ पुत्र
हरि+शंकर=हरिशङ्कर तीसरा पुत्र (अनुराग-रत्न प्रकाशक)
भासती — से — सती+शङ्कर=सतीशङ्कर चौथा पुत्र
विद्या+वती=विद्यावती — एक मात्र पुत्री
मूल+शङ्कर=मूलशङ्कर — पौत्र —
शारदा+देवी=शारदादेवी — पौत्री —
भगवती×२=दो भगवती पुत्र वधू

(उमा) "उमाहैमवतीम्" केनोपनिषद् चतुर्थखण्ड

* श्री० स्वामी शंकराचार्यजीने उमा का अर्थ विद्या, तथा हैमवती का भाव शोभावाली लिखा है ।

शंकरस्वामी, शंकरदास (४)

(दोहा)

शंकरस्वामी और है, सेवक शंकर और ।
भेद भावना में भरे, नाम रूप सब ठौर ॥१॥

---

* प्रार्थनापञ्चक (५) *

* सगणात्मक—सवैया *

द्विज वेद पढ़ें, सुविचार बढ़ें, बल पाय चढ़ें, सब ऊपर को ।
अविरुद्ध रहैं, ऋजु पन्थ गहैं, परिवार कहैं, वसुधा भर को ॥
ध्रुव धर्म धरें, पर दुःख हरें, तन त्याग तरें, भव सागर को ।
दिन फेर पिता, वरदे सविता, करदे कविता, कवि शंकर को ॥१॥

विदुषी उपजें, क्षमता न तजें, व्रत धार भजें, सुकृती वर को ।
सधवा सुधरें, विधवा उबरें, सकलंक करें, न किसी घर को ॥
दुहिता न बिकें, कुटनी न टिकें, कुलबोर छिकें, तरसें दर को ।
दिन फेर पिता, वरदे सविता, करदे कविता, कवि शंकर को ॥२॥

नृपनीति जगे, न अनीति ठगे, भ्रम भूत लगे, न प्रजाधर को ।
झगड़े न मचें, खलखर्व लचें, मद से न रचें, भट संगर को ॥
सुरभी न कटें, न अनाज घटें, सुख भोग डटें, डपटें डर को ।
दिन फेर पिता, वरदे सविता, करदे कविता, कवि शंकर को ॥३॥

महिमा उमड़े, लघुता न लड़े, जड़ता जकड़े, न चराचर को ।
शठता सटके, मुदिता मटके, प्रतिभा भटके, न समादर को ॥
विकसे विमला, शुभकर्म-कला, पकड़े कमला, श्रमके कर को ।
दिन फेर पिता, वरदे सविता, करदे कविता, कवि शंकर को ॥४॥

मतजाल जलें, छलिया न छलें, कुल फूल फलें, तज मत्सर को ।
अघ दम्भ दवें, न प्रपञ्च फवें, गुरु मान नवें, न निरन्तर को ॥
सुमरें जप से, निरखें तप से, सुरपादप से, तुझ अन्तर को ।
दिन फेर पिता, वरदे सविता, करदे कविता, कवि शंकर को ॥५॥

आनन्दनाद (६)

(दोहा)

तू मुझसे न्यारा नहीं, मैं तुझसे कब दूर ।
तेरी महिमा से मिली, मेरी मति भरपूर ॥१॥

(समस्या) चमके अनुरागरत्न मेरा (पूर्ति)

(कलाधरात्मक मिलिन्दपाद (७)

कवि शंकर विश्वके विधाता । मुद मङ्गल मूल मुक्तिदाता ॥
प्रणवादि पवित्र नाम धारी । भवसागर सेतु शोक हारी ॥
प्रभु पाय प्रकाश पुंज तेरा ।
चमके अनुरागरत्न मेरा ॥१॥

जिसके उपदेश में दया है । अति-आ धन नन्द छागया है ॥
जिसने न सरस्वती विसारी । विचरा बन बालब्रह्मचारी+ ॥
उसके तप तेज का बसेरा ।
चमके अनुरागरत्न मेरा ॥२॥

मग-दीपक-ब्रह्म-ज्ञानका है । उपलक्षण धर्म ध्यान का है ॥
लघु लक्ष्यपरोपकार का है । प्रण पक्ष सभा सुधार का है ॥
जगदुन्नति पै जमाय डेरा ।
चमके अनुरागरत्न मेरा ॥३॥

+ इस पद्य से महर्षि दयानन्द सरस्वतीजीका नाम निकलता है ।

गुण गायक धर्मराज का है। अनुभाव सुधी-समाज का है ॥
शुभचिन्तक भारतेशका है। उपहार दरिद्र देश का है ॥
कवि मण्डलका कहाय चेरा।
चमके अनुरागरत्न मेरा ॥४॥

अगले कवि ऋक्ष× से सही थे। तुलसी शशि, सूर सूरही थे ॥
अब केशव की न होड़ होगी। फिर कौन बने कबीर योगी ॥
कविता कृषि-कर्मका कमेरा।
चमके अनुरागरत्न मेरा ॥५॥

रचना रसराज की निहारी। जयसिंह सखा बना बिहारी ॥
विधि वीर विलास की विराजी। कवि भूषण को मिला शिवाजी ॥
कर मेल ÷ कुबेर से घनेरा।
चमके अनुरागरत्न मेरा ॥६॥

सबको वह देश-भक्त भाया। जिसने पद भारतेन्दु * पाया ॥
रच ग्रन्थ घने सुधार बोली। कविता पर प्रेम गांठ खोली ॥
हरिचन्द हटा रहै अँधेरा।
चमके अनुरागरत्न मेरा ॥७॥

शुभ-शब्द-प्रयोग, पद्य प्यारे। रच पिङ्गल रीति से सुधारे ॥
रस, भूषण, भावसे भरे हैं। परखें पटु-पारखी खरे हैं ॥
मनके सुविचारका चितेरा।
चमके अनुरागरत्न मेरा ॥८॥

कवि कोविद ध्यान में धरेंगे। सदभिज्ञ विवेचना करेंगे ॥

× ऋक्ष = तारा - सितारा -

÷ कुबेर = परमात्मा - धनेश -

* भारतेन्दु = नागरी नायक बाबू हरिश्चन्द्रजी।

सब साधन सत्य के गहैंगे। गुण दूषण न्याय से कहैंगे ॥
परखे पर तर्क का तरेरा।
चमके अनुरागरत्न मेरा ॥९॥

सब धान समान तोल डाले+। समझे पिक और काक काले ॥
समता मणि काच में बखाने। अनभिज्ञ भला बुरा न जाने ॥
न बने उस ऊँटका कटेरा।
चमके अनुरागरत्न मेरा ॥१०॥

भजनीक, सुबोध, भक्त गावें। न कपोल कुरागिया बजावें ॥
रचना पर प्रीति हो बड़ों की। गरजे न गढ़ंत तुक्कड़ों की ॥
गरिमा न गिरासके गमेरा।
चमके अनुरागरत्न मेरा ॥११॥

परपद्य, प्रसंग काटते हैं। यशका रस चोर चाटते हैं ॥
छलिया छलसे न छूटते हैं। गद्य ग्रन्थ लवार लूटते हैं ॥
लगजाय न लालची लुटेरा।
चमके अनुरागरत्न मेरा ॥१२॥

चमगिदड़ चोर डोलते हैं। शठ स्यार उलूक बोलते हैं ॥
बिन भानु-प्रदीप, चन्द्र तारे। तम घोर घटा सके न सारे ॥
रजनी कटजाय हो सवेरा।
चमके अनुरागरत्न मेरा ॥१३॥

बल, पौरुष का प्रकाश होगा। श्रम साहस का विकाश होगा ॥
गुरुता गुरु ज्ञान की बढ़ैगी। लघुता अभिमान की कढ़ैगी ॥

+सब धान समान तोल डाले=श्लोक

परीक्षकाः सन्तिनयत्रदेशे - नार्घन्तिरत्नानिसमुद्रजानि -
आभीरदेशेकिलचन्द्रकान्तं - त्रिभिर्वराटैर्विपणन्तिगोपाः ॥१॥

प्रभुने अनुकूल काल फेरा ।
चमके अनुरागरत्न मेरा ॥१४॥

तनदृश्य जरा अशक्ति का है । मन भाजन जाति भक्ति का है ॥
धनराशि न पास दान को है । मृदुभाषण मात्र मान को है ॥
यश उज्ज्वलका उधार घेरा ।
चमके अनुरागरत्न मेरा ॥१५॥

अनुभूत विवेक यंत्र डाला । मथ सत्यसमुद्र को निकाला ॥
वर वर्ण सुवर्ण में जड़ा है । हित के हिय हार में पड़ा है ॥
बतलाये न लाख का लखेरा ।
चमके अनुरागरत्न मेरा ॥१६॥

भगवती–भारती[१] (८)

(सोरठा)

जिसके आननचार, उत्तम §अन्तःकरण हैं ।
दुहिता परमोदार, उस*विरञ्चिकी भारती ॥१॥

सरस्वतीकी महावीरता (९)

(भुजङ्गप्रयात)

महावीरता भारती धारती है ।
प्रमादी महामोहको मारती है ॥
बड़ोंके बड़े कामकी है लड़ाई ।
मिलीथी, मिलीहै, मिलेगीबड़ाई ॥१॥

---

[१] भारती = सरस्वती – वाग्देवता – जीव की वह शक्ति जिस के द्वारा अपने विचारों को दूसरों पर प्रकट करता है और आत्मज्ञता पूर्वक ब्रह्मका व्याख्याता बनता है –

§ उत्तम अन्तः करण = सत्यसम्पन्नमन १, आत्मविज्ञानबुद्धि २, योगयुक्त चित्त ३, आत्मप्रतिष्ठापूर्ण अहंकार ४ –

* विरञ्चि = ब्रह्मा अर्थात् जीवात्मा –

(घनाक्षरी कवित्त)

वैदिक विलास करे ज्ञानागार कानन में,
धर्मराज हंस पै समोद चढ़ती रहै ।
फेर फेर दिव्यगुण मालिका प्रवीणता की,
पुस्तक पै मूलमंत्र पाठ पढ़ती रहै ॥
योग बल वीणाके विचार व्रत तार बाजें,
अञ्झल बिशिष्टवाणी घोर कढ़ती रहै ।
शंकर विवेक प्राणवल्लभा सरस्वती में,
मेधा महावीरता अमित बढ़ती रहै ॥ १ ॥

बालब्रह्मचारी के विशद भाल मन्दिर में,
आसन जमाय ज्ञान दीपक जगाती है ।
सत्य और झूंठ की विवेचना प्रचंड शिखा,
कालिमा कुयश की कपटपै लगाती है ॥
प्रेमपालपौरुष प्रकाश की छबीली छटा,
बधिक विरोध अन्धकार को भगाती है ।
शंकर सचेत महावीरता सरस्वती की,
जीव की ठसक ठगियों से न ठगाती है ॥२॥

आपसके मेलकी बड़ाई भरपेट करे,
सामाजिक–शक्ति–सुधा पान करती रहै ।
भूले न प्रमाणको तजे न तर्कसाधनको,
युक्ति चातुरी के गुणगान करती रहै ॥
मानकरे वाद, प्रतिवाद, कोटि, कल्पनाका,
जाल जल्पना का अपमान करती रहै ।
शंकर निदान महावीरता सरस्वती की,
मारालिक न्याय सदा दान करती रहै ॥ ३ ॥

प्रामादिक पोच पक्षपात के न पास रहै,
सत्य को असत्य से अशुद्ध करती नहीं।
औपाधिक धारणा न सिद्धि के समीप टिके,
स्वाभाविक चिन्तन में भूल भरती नहीं॥
न्याय की कठोर काट छांट को समोद सुने,
कोरे कूटवाद पर कान धरती नहीं।
शंकर अशंक महावीरता सरस्वती की,
उद्धत अजान जालियों से डरती नहीं॥ ४॥

मन्दमत तारों की कुवासना दमक सारी,
वैदिक विवेक तप तेज में बिलाती है।
ध्येय ध्यान, धारणादि, साधना सरोवर में,
सामाधिक संयम सरोरुह खिलाती हैं॥
शंकर से पावे सिद्ध चक्र सिद्धि चकई को,
योग दिन में न भेद रजनी मिलाती है।
ब्रह्म रवि ज्योति महावीरता सरस्वती की,
शुद्ध अधिकारियों को अमृत पिलाती है॥५॥

ब्रह्मा, मनु, अङ्गिरा, वसिष्ठ, व्यास, गोतम से,
सिद्ध, मुनि मण्डल के ध्यान में धसी रही।
राम और कृष्ण के प्रताप की विभूति बनी,
बुद्ध के विशुद्ध ध्रुव लक्ष्य में लसी रही॥
शंकर के साथ कर एकता कबीरजी की,
सुरत सखी के गास गास में गसी रही।
मेंट मत पन्थ महावीरता सरस्वती की,
देव दयानन्द के बचन में बसी रही॥ ६॥

मान दान माघ को, महत्व दान मम्मट को,
दान कालिदास को सुयश का दिला चुकी।
रामामृत तुलसी को, काव्यसुधा केशव को,
राधिकेश भक्तिरस सूर को पिलाचुकी॥
मुख्य-मान-पान देश भाषा परिशोधन का,
भारत के इन्दु हरिचन्द को खिलाचुकी।
सुकवि-सभा में महावीरता सरस्वती की,
शंकरसे दीन मतिहीन को मिलाचुकी॥ ७॥

साहसी सुजान को सुपन्थ दिखलाती रहै,
कायर कुचालियों की गैल गहती नहीं।
पुण्यशील भिक्षुक अकिञ्चन को ऊँचा करे,
पापी धनपति को प्रतापी कहती नहीं॥
उद्यमी उदार के सुकर्म की सुख्याति बने,
आलसी कृपण की बड़ाई सहती नहीं।
शंकर अदम्य महावीरता सरस्वती की,
वञ्चक बनावटी के पास रहती नहीं॥ ८॥

प्यार भरपूर करे लोकसिद्ध सभ्यता पै,
अधमा असभ्यता पै रोष करती रहै।
ग्रन्थकार लेखक महाशयों की रचना से,
भाषा का विशद बड़ा कोष करती रहै॥
पक्षपात छोड़कर सत्य समालोचना से,
लेखों के प्रसिद्ध गुण दोष करती रहै।
शंकर पवित्र महावीरता सरस्वती की,
प्रेमी पुरुषों का परितोष करती रहै॥९॥

राजभक्ति भूषिता प्रजा में सुख भोग भरे,
मंगल महामति महीप का मनाती है ।
धीर, धर्मवीर, कर्मवीर, नर नामियों के,
जीवन अनूठे जन जन को जनाती है ॥

बांध परतंत्रता स्वतंत्रता को समता से,
प्रीति उपजावे भ्रम भंग न छनाती है ।
शंकर उदार महावीरता सरस्वती की,
बानिक सुधार का यथाविधि बनाती है ॥१०॥

दान और भोग से बचाय धन सम्पदा को,
भागे सब सूम साथ कुछ भी न ले गये ।
हिंसक, लबार, राजद्रोही, ठग, जार, ज्वारी,
काल विकराल की कुचाल से दले गये ॥
तामसी, बिसासी, शठ, मादकी, प्रमाद भरे,
लालची मतों के छल बल से छले गये ।
शंकर मिली न महावीरता सरस्वती की,
पातकी बिताय वृथा जीवन चले गये ॥११॥

झंझट अड़ाय अड़े झकड़ी अजान जूझें,
हारे उपदेशक सुधारक न जीते हैं ।
प्रेमामृत बूंद भी मिला न प्रेमसागर से,
वैरवारि से न कुविचार घट रीते हैं ॥
काट काट एकता का शोणित बहाय रहे,
हाय ! न मिलाप महिमा का रस पीते हैं ।
शंकर फली न महावीरता सरस्वती की,
जीवन अधम अनमेल ही में बीते हैं ॥१२॥
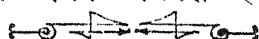
भारती से याचना (१०)

(सोरठा)

प्रकटे महदुद्योत, ब्रह्म विवेक दिनेश का ।
चमकें मत खद्योत, अब न अविद्या रातमें ॥ १ ॥

कविकुलकी मङ्गल कामना* (११)

(षट्पदीछन्द)

सुन्दर शब्द प्रयोग, मनोहर भाव रसीले ।
दूषण-हीन प्रशस्त, पद्य भूषण भड़कीले ॥
प्रिय प्रसादता पाय, मर्म महिमा दरसावे ।
रसिकों पर आनन्द, सुधा-शीकर बरसावे ॥
जिन के द्वारा इस भांति की, परम शुद्ध कविता कढ़े ।
उन कविराजों का लोक में, सुयश सदा शंकर बढ़े ॥१॥

कविकी सदाशा (१२)

(दोहा)

रहती है जो शारदा, कविमण्डल के साथ ।
क्या!शंकर के शीशपै, वह न धरेगी हाथ ॥ १ ॥

---

*(प्राचीन श्लोक)

"किंकवेस्तस्यकाव्येन, किंकाण्डेनधनुष्मतः।
परस्य हृदये लग्नं, नघूर्णं यति यच्छिरः॥ १॥"
"धर्मार्थ काम मोक्षेषु, वैचक्षण्यं कलासुच।
करोति कीर्तिं प्रीतिंच, साधुकाव्यनिषेवणम् ॥ २॥"

कविता की बड़ाई (१३)

(दोहा)

दोहा कविता गायका, जब दोहा बनजाय।
तब दोहा साकारहो, नव यश दोहा खाय॥ १॥

प्रणयपंचक (१४)

(दोहा)

सत्कविता के पारखी, प्यारे सुकवि समाज।
कृपया मेरी ओर भी, देख यथोचित आज॥ १॥

रखता है तू न्याय से, जिस पै हितका हाथ।
अपनालेता है उसे, फिर न बिसारे साथ॥ २॥

जो मेरी मति ने तुझे, कुछ भी किया प्रसन्न।
तो मन मानेगा उसे, विनय शक्तिसम्पन्न॥ ३॥

वर्तमान बोली खड़ी, पकड़ी चाल नवीन।
सारी रचना जांचले, परख प्रथा प्राचीन॥ ४॥

जो सरस्वती आदिमें, निकल चुके हैं लेख।
उनकी भी संशोधना, इस ग्रन्थन में देख॥ ५॥

प्रस्ताव पंचक (१५)

(दोहा)

अपनाले साहित्य को, कर भाषा पर प्यार।
गुण गाले संगीत के, शंकर काव्यसुधार॥ १॥

गद्य, पद्य, चम्पू रचें, सिद्ध सुलेखक लोग ।
उनकी शैली सीखले, कर साहित्य प्रयोग ॥ २ ॥
भारत–भाषा का बढ़े, मान महत्व अपार ।
गौरव धारे नागरी, ललित लेख विस्तार ॥ ३ ॥
नारद की शिक्षा फले, पाय भरत से मान ।
लोकमित्र संगीत का, उमगे मङ्गल गान ॥ ४ ॥
भव्य कल्पना-शक्ति से, प्रतिभा करे सहाय ।
ब्रह्मानन्द सहोदरा, सत्कविता बनजाय ॥ ५ ॥

पद्यरचनाकी विशेषता (१६)

[शंकर छंद]

अक्षर तुल्य वर्ण वृत्तों में, सहित गणों के आवेंगे ।
मुक्तक,छन्द,मात्रिकों में भी, वर्ण बराबर पावेंगे ॥
देखो पद प्रत्येक पद्य के, सकल विधान प्रधान ।
समता से दल,खण्डों में भी, गुरु, लघु गिनो समान ॥ १ ॥

ग्रन्थकार का आत्म परिचय (१७)

(षट्पदी छन्द)

पढ़ विद्या भरपूर, न पण्डितराज कहाया ।
बन बल-धारी शूर, न यश का स्रोत बहाया ॥
उद्यम को अपनाय, न धनका कोष कमाया ॥
जीवन में सदुपाय, न सेवक भाव समाया ।
हा! कुछ भी गौरव-कंज का, सौरभ उड़ा न चूक है ।
धिक्कूप हरदुआगंज का, शंकर शठ मण्डूक है ॥ १ ॥

अनुरागरत्न का जन्मकाल १८

(हरिगीतिकाछन्द)

बसु, राग, अङ्क, मयङ्क, संवत्, विक्रमीय उदार है ।
तिथि पञ्चमी सित पक्षकी मधु, मास मङ्गलवार है ॥
मतिमन्द शंकर होचुका अब, ठीक बावन वर्ष का ।
"अनुरागरत्न" अमोल पाकर, भोग जीवन हर्ष का ॥ १ ॥

आनन्दोद्गार १९

कलाधरात्मकराजगीत

सिज में नट राज ला चुका है ।
उस नाटक में नचा चुका है ॥
जिस के अनुसार खेल खेले ।
वह शैशव दूर जा चुका है ॥
उस यौवन का न खोज पाता ।
अपना रस जो चखा चुका है ॥
तन पंजर होगया पुराना ।
मन मौज नवीन पाचुका है ॥
अब शीकर सिन्धु में मिलेगा ।
शुभ काल समीप आचुका है ॥
शिव शंकर का मिलाप होगा ।
दिन अन्तर के बिता चुका है ॥

मङ्गलगान २०

(दोहा)

ज्ञानी सिद्धसमाज में, करले मंगल गान ।
ज्ञान गायनानन्द का, दे हम सबको दान ॥

मङ्गलोद्गार-गीत २१

गारे गारे मंगल बार बार ॥ टेक ॥
धर्म धुरीण धीर ब्रत धारी, उमग योग बल धार, धार ॥
गारे गारे मंगल बार बार ।
ठौर ठौर अपने ठाकुर को, निरख प्रेम निधि बार, बार ॥
गारे गारे मंगल बार बार ।
तर भवसिन्धु आप औरों में, अभय भाव भर तार, तार ॥
गारे गारे मंगल बार बार ।
माग दयालु देव शंकरसे, चतुर! चारु फल चार, चार ॥
गारे गारे मंगल बार बार ।

भावार्थ सार २२

(दोहा)

बांच लीजिये भूमिका, भाव नहीं कुछ और ।
जागै जाति सुधारकी, नीव जमें सब ठौर ॥

सेवकविनीत

नाथूराम शंकर शर्म्मा, (शंकर)

हरदुआगंज (अलीगढ़) ।

विश्वांनिदेव सवितर्दुरितानिपरासुव ।
यद्भद्रंतन्न आसुव ॥ य० अ० ३ मं० ३ ॥

सद्गुरु सूक्ति

सर्वात्मा सच्चिदानन्दो, नन्तो योन्याय कृच्छुचिः ।
भूयात्तमां सहायो नो, दयालुः सर्वशक्तिमान् ॥ १ ॥

शङ्कर विश्व, शंकरभक्त १

(दोहा)

शंकर स्वामी से न हो, शंकर सेवक दूर ।
न्याय दया मागे मिले, ज्ञान भक्ति भरपूर ॥ १ ॥

मङ्गल-कामना २

(सोरठा)

मंगलमूल महेश, दूर अमंगल को करे ।
ब्रह्मविवेक दिनेश, मोह महातमको हरे ॥ १ ॥

ॐप्रणव-प्रशंसा ३

दोहा

शंकर स्वामी के सुने, शंकर नाम अनेक ।
मुख्य सर्वतोभद्र है, मङ्गलमय ओमेक ॥ १ ॥

*ओमुत्कर्ष ४

(शङ्करछन्द)

एक इसी को अपना साथी, अर्थ अशेष बताते हैं ।
उच्चारण के साधन सारे, रसना रोक जताते हैं ॥
ऐसा उत्तम शब्द कोष में, मिला न अबतक अन्य ।
ओमुद्भूत नाम शंकर का, सकल कलाधर धन्य ॥ १ ॥

ओमर्थज्ञान ५

(दोहा)

मुख्य नामहै ईश का, ओमनुभूत प्रसिद्ध ।
योगी१ जपते हैं इसे, सुनते हैं सब सिद्ध ॥

ॐतस्यवाचकः प्रणवः ॥ यो० अ० १ पा० १ ॥

*(ओ३म्) परमात्मा का मुख्य नाम है-इस का अर्थ मात्र से स्वाभाविक सम्बन्ध है-कण्ठ से ओष्ठ तक जितने वर्णोत्पादक स्थान हैं वे सब इस (ओ३म्) के उच्चारण में काम आजाते हैं-परन्तु जिह्वा का व्यापार बन्द रहता है-ध्वन्यात्मक रूप से भी सुनाजाता है इसी से यह (ओ३म) शब्देश्वर शंकरका स्वाभाविक नाम है ।

१ तज्जपस्तदर्थ भावनम् ॥ यो० अ० १ पा० १ सू० २८

ओमाराधन ६

(ध्रुवपद) ÷

ओमनेक बार बोल,
प्रेम के प्रयोगी ॥ टेक ॥

है यही अनादि नाद, निर्विकल्प निर्विवाद,
भूलते न पूज्य पाद, वीतराग योगी ।
ओ० बा० बो० प्रे० प्रयोगी ॥

बेदको प्रमाण मान, अर्थ योजना बखान,
गारहे गुणी सुजान, साधु स्वर्ग भोगी ॥
ओ० बा० बो० प्रे० प्रयोगी ॥

ध्यान में धरें विरक्त, भाव से भजें सुभक्त,
त्यागते अघी अशक्त, पोच पाप रोगी ।
ओ० बा० बो० प्रे० प्रयोगी ॥

शंकरादि नित्य नाम, जो जपे बिसारकाम,
तो बने विवेक धाम, मुक्ति क्यों न होगी ।
ओ० बा० बो० प्रे० प्रयोगी ॥

ओमिष्ट देव ७

दोहा

ओमक्षर के अर्थ का, धरले ध्यान पवित्र ।
बोध बना देगा तुझे, अमृत मित्र का मित्र ॥

÷ ध्रुवपद = ध्रुपद – यह गीत ब्रह्मदण्डकवृत्त से रचागया है इस की टेक उक्तवृत्त के एक चरण का परार्द्ध मात्रहै आगे के चरण उक्त दण्डक के पूरेचरण स्वरूप हैं –

ओमर्थज्ञान ८

(भजन)

ओमक्षर अखिलाधार,
जिसने जान लिया ॥टेक॥

एक, अखण्ड, अकाय, असङ्गी, अद्वितीय, अविकार,
व्यापक, ब्रह्म, विशुद्धविधाता, विश्व, विश्वभरतार,
को पहँचान लिया।
ओ०अ०जि०जानलिया ॥

भूतनाथ, भुवनेश, स्वयंभू, अभय, भावभण्डार,
नित्य, निरञ्जन, न्यायनियन्ता, निर्गुण, निगमागार,
मनु को मान लिया ॥
ओ०अ०जि० जानलिया ॥

करुणाकन्द, कृपालु, अकर्त्ता, कर्महीन करतार,
परमानन्द–पयोधि, प्रतापी, पूरण–परमोदार,
से सुखदान लिया।
ओ०अ०जि० जान लिया ॥

सत्य सनातन, श्री शंकर को, समझा सबका सार,
अपना जीवन बेड़ा उसने, भवसागर से पार,
करना ठान लिया ॥
ओ०अ०जि० जानलिया ॥१॥

शंकरादिनामोच्चारण ८

(दोहा)

शंकर सर्वाधार है, शंकर ही सुख धाम।
शंकर प्यारे मंत्र हैं, शंकर के सब नाम ॥१॥

भजन-माला १०

(दोहा)

गूंद ज्ञान के तार , गुरिया गुरु के नाम।
इस माला के मेल से, भजन करो निष्काम ॥१॥

महेशनामावली ११

(भजन)

भज भगवान के हैं,
मंगल मूल नाम ये सारे ॥टेक॥

ओमद्वैत, अनादि, अजन्मा, ईश, असीम, असंग।
एक, अखण्ड, अर्यमा, अत्ता, अखिलाधार, अनंग ॥
भ० भ० के० मं० मू० नाम ये सारे ॥

सत्य सच्चिदानन्द, स्वयंभू, सद्गुरु ज्ञान गणेश।
सिद्धोपास्य, सनातन, स्वामी, मायिक, मुक्त, महेश ॥
भ० भ० के० मं० मू० नाम ये सारे ॥

विश्वविलासी, विश्वविधाता, धाता, पुरुष, पवित्र।
माता, पिता, पितामह, त्राता, बन्धु, सहायक, मित्र ॥
भ० भ० के० मं० मू० नाम ये सारे ॥

विश्वनाथ, विश्वम्भर, ब्रह्मा, विष्णु, विराट्, विशुद्ध।
वरुण, विश्वकर्मा, विज्ञानी, विश्व, बृहस्पति, बुद्ध ॥
भ० भ० के० मं० मू० नाम ये सारे ॥

शेष, सुपर्ण, शुक्र, श्रीस्रष्टा, सविता, शिव, सर्वज्ञ।
पूषा, प्राण, पुरोहित, होता, इन्द्र, देव, यम, यज्ञ ॥
भ० भ० के० मं० मू० नाम ये सारे ॥

अग्नि, वायु, आकाश, अङ्गिरा, पृथिवी, जल, आदित्य ।
न्यायनिधान, नीतिनिर्माता, निर्मल, निर्गुण, नित्य ॥
भ० भ० के० मं० मू० नाम ये सारे
ब्रह्म, वेदवक्ता, अविनाशी, दिव्य, अनामय, अन्न ।
धर्मराज, मनु, विद्याधारी, सद्गुण-गण-सम्पन्न ॥
भ० भ० के० मं० मू० नाम ये सारे ॥
सर्वशक्तिशाली, सुखदाता, संसृति-सागर-सेतु ।
काल, रुद्र, कालानल, कर्त्ता, राहु, चन्द्र, बुध, केतु ॥
भं० भ० के० मं० मू० नाम ये सारे ॥
गरुत्मान, नारायण, लक्ष्मी, कवि, कूटस्थ, कुबेर ।
महादेव, देवी, सरस्वती, तेज, उरुक्रम, फेर ॥
भ० भ० के० मं० मू० नाम ये सारे ॥
भक्तो ! नाम सुने शंकर के, अटल एकसौ आठ ।
अर्थ विचारो इस माला के, कर से घिसो न काठ ॥
भ० भ० के० मं० मू० नाम ये सारे ॥

कृपाकी कामना १२

(दोहा)

अनुकम्पा आनन्द की, जब होगी अनुकूल ।
तब ही होंगे जीव के, कष्ट विनष्ट समूल ॥ १ ॥

ईश्वरप्रणिधानपञ्चक १३

(हरिगीतिका छन्द)

अज, अद्वितीय, अखण्ड, अक्षर, अर्यमा, अविकार है ।
अभिराम, अव्याहत, अगोचर, अग्नि, अखिलाधार है ॥

मनु, मुक्त, मङ्गलमूल, मायिक, मानहीन, महेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥ १ ॥

वसु, विष्णु, ब्रह्मा, बुध, बृहस्पति, विश्वव्यापक, बुद्ध है ।
वरुणेन्द्र, वायु–वरिष्ट,–विश्रुत, वन्दनीय, विशुद्ध है ॥
गुणहीन, गुरु, विज्ञानसागर, ज्ञान–गम्य–गणेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥ २ ॥

निरुपाधि–नारायण–निरञ्जन, निर्भयामृत–नित्य है ।
अत्ता, अनादि, अनन्त, अनुपम, अन्न, जल, आदित्य है ॥
परिभू, पुरोहित, प्राण, प्रेरक, प्राज्ञ–पूज्य–प्रजेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥ ३ ॥

कवि, काल, कालानल, कृपाकर, केतु, करुणा-कन्द है ।
सुखधाम, सत्य, सुपर्ण, सच्छिव, सर्व-प्रिय, स्वच्छन्द है ॥
भगवान, भावुक-भक्त-वत्सल, भू, विभू भुवनेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥ ४ ॥

अव्यक्त, अकल, अकाय, अच्युत, अङ्गिरा, अविशेष है ।
श्रीमच्छुभाशुभशून्य, शंकर, शुक्र, शासक, शेष है ॥
जगदन्त–जीवन–जन्मकारण, जातवेद, जनेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥ ५ ॥

विनय–वन्दना १४

(दोहा)

ज्ञान–गम्य सर्वज्ञ है, शंकर तुही स्वतंत्र ।
तेरे ही उपदेश हैं, विश्रुत–वैदिक–मंत्र ॥ १ ॥

शङ्कर-कीर्त्तन १५

(रुचिरा छन्द)

हे शंकर कूटस्थ अकर्त्ता, तू अजरामर-अत्ता है।
तेरी परम-शुद्ध-सत्ता की, सीमा-रहित-महत्ता है॥
जड़ से और जीव से न्यारा, जिस ने तुझ को जाना है।
उस योगीश-महाभागी ने, पकड़ा ठीक ठिकाना है॥ १॥

हे अद्वैत, अनादि, अजन्मा, तू हम सबका स्वामी है।
सर्वाधार, विशुद्ध, विधाता, अविचल अन्तर्यामी है॥
भक्ति-भावना की ध्रुवता से, जो तुझ को अपनाता है।
वह-विद्वान-विवेकी योगी, मनमाना सुख पाता है॥ २॥

हे आदित्य-देव-अविनाशी, तू करतार हमारा है।
तेजोराशि, अखण्ड-प्रतापी, सबका पालन हारा है॥
जो धर ध्यान धारणा तेरी, प्रेम-भाव में भरता है।
तू उस के मस्तिष्क-कोष में, ज्ञान उजाला करता है॥ ३॥

हे निर्लेप-निरञ्जन, प्यारे, तू सब कहीं न पाता है।
सब में पाता है पर सारा, सब में नहीं समाता है।
जो संसार-रूप-रचना में, ब्रह्म-भावना रखता है।
वह तेरे निर्भेद-भाव का, पूरा स्वाद न चखता है॥ ४॥

हे भूतेश महाबल-धारी, तू सब संकट-हारी है।
तेरी मङ्गल-मूल-दया का, जीव-यूथ अधिकारी है॥
धर्मधार जो प्राणी तुझ से, पूरी लगन लगाता है।
विद्या, बल देता है उसको, भ्रम का भूत भगाता है॥५॥

हे आनन्द महासुख दाता, तू त्रिभुवन का त्राता है।
मुक्तक, माता, पिता हमारा, मित्र, सहायक, भ्राता है॥
जो सब छोड़ एक तेरा ही, नाम निरन्तर लेता है।
तू उस प्रेमाधार-पुत्र को, मंत्र-बोध-बल देता है॥६॥

हे बुध, जातवेद, विज्ञानी, तू वैदिक-बल दाता है।
कर्मोपासन, ज्ञान इन्हीं से, जीवन जीव बिताता है॥
जो समीपता पाकर तेरी, जो कुछ जी में भरता है।
अर्थ समझ लेता है जैसा, वह वैसा ही करता है॥७॥

हे करुणा-सागर के स्वामी, तू तारक-पद पाता है।
अपने प्रिय भक्तों का बेड़ा, पल में पार लगाता है॥
तेरी पारहीन प्रभुता से, जिस का जी भरजाता है।
वह योगी संसार-सिन्धु को, मोह त्याग तर जाता है॥८॥

हे सर्वज्ञ, सुबोध—विहारी, तू अनुपम—विज्ञानी है।
तेरी महिमा गुरुलोगों ने, वचनातीत बखानी है॥
जिसने तू जाना जीवन को, संयम-रस में साना है।
उस संन्यासी ने अपने को, सिद्ध-मनोरथ माना है॥९॥

हे सुविश्वकर्मा, शिव, स्रष्टा, तू कब ठाली रहता है।
निर्विराम तेरी रचना का, स्रोत सदा से बहता है॥
जो आलस्य विसार विवेकी, तेरे घाट—उतरता है।
उस उद्योग-शील के द्वारा, सारा देश सुधरता है॥१०॥

हे निर्दोष-प्रजेश प्रजा को, तू उपजाय बढ़ाता है।
तेरे नैतिक-दण्ड-न्याय से, जीव कर्म-फल पाता है॥

पक्षपात को छोड़ पिता जो, राज-धर्म को धरता है ।
वह सम्राट्-सुधी देशों का, सच्चा शासन करता है ॥११॥

हे जगदीश लोक-लीला के, तू सब दृश्य दिखाता है ।
जिन के द्वारा हमलोगों को, शिल्प अनेक सिखाता है ॥
जिस को नैसर्गिक-शिक्षा का, पूरा अनुभव होता है ।
वह अपने आविष्कारों से, बीज सुयश के बोता है ॥१२॥

हे प्रभु यज्ञ-देव—आनन्दी, तू मंगल-मय—होता है ।
तप्त-भानु-किरणों से तेरा, होम निरन्तर होता है ॥
जो जन तेरी भांति अग्नि में, हित से आहुति देता है ।
वह सारे भौतिक देवों से, दिव्य सुधा-रस लेता है ॥१३॥

हे कालानल, काल, अर्यमा, तू यम, रुद्र, कहाता है ।
धर्म-हीन दुष्टों के दल में, दुःख-प्रवाह बहाता है ॥
जो तेरी वैदिक-पद्धति से, टेढ़ा तिरछा चलता है ।
वह पापी, उद्दण्ड-प्रमादी, घोर ताप से जलता है ॥१४॥

हे कविराज वेदमंत्रों के, तू कविकुल का नेता है ।
गद्य, पद्य, रचना की मेधा, दिव्य-दया कर देता है ॥
सर्व-काल तेरे गुण गाता, जो कवि-मण्डल जीता है ।
शंकर भी है अंश उसी का, ब्रह्म-काव्य रसपीता है ॥१५॥

मित्र मिलाप साखी १६

मैं समझता था कहीं भी, कुछ पता तेरा नहीं ।
आज शंकर तू मिला तो, अब पता मेरा नहीं ॥१॥

योगोद्गार गीत १७

मिल जाने का ठीक ठिकाना,

अवतो जाँनोरे³ ॥ टेक ॥

बैठ गया विज्ञान-कोष पै, गुरु-गौरव का थाना ।

प्रेम पन्थ में भेड़ चाल से, पड़ा न मेल मिलाना ॥

बदला बाँनोरे³। अब तो जाँनोरे³ ॥

मतवालों की भांति न भावे, वाद विवाद बढ़ाना ।

समता ने सारे अपनाये, किस को कहूं बिराना ॥

कुनबा माँनोरे³। अवतो जाँनोरे³ ॥

देख अखण्ड-एक में नाना, दृश्य महा-सुख माना ।

बाजें साथ अनाहत बाजे, थिरके मन मस्ताना ॥

महिमा गाँनोरे³। अब तो जाँनोरे³ ॥

विद्या-धार-वेद ने जिस को, ब्रह्म-विशुद्ध बखाना ।

भागी भूल आज उसप्यारे, शंकर को पहँचाना ॥

मिलना ठाँनोरे³। अब तो जाँनोरे³ ॥

परमात्म पञ्चक १८

दोहा

शंकर स्वामी एक है, सेवक जीव अनेक ।

ये अनेक हैं एक में, वह अनेक में एक ॥१॥

विश्व-विलासी-ब्रह्म का, विश्व-रूप सब ठौर ।

विश्वरूपता से परे, शेप नहीं कुछ और ॥२॥

होना सम्भव ही नहीं, जिस में सैक, निरेक ।

जाना उस अद्वैत को, किसने विना विवेक ॥३॥

जिस की सत्ता का कहीं, नादि, न मध्य, न अन्त ।
योगी हैं उस बुद्ध के, बिरले सन्त, महन्त ॥४॥
सर्व-शक्ति-सम्पन्न है, स्वगत—सच्चिदानन्द ।
भूले, भेद, अभेद में, मान रहे मति-मन्द ॥५॥

ब्रह्मविवेकाष्टक १९

(घनाक्षरी—कवित्त)

एक शुद्ध—सत्ता में अनेक भाव भासते हैं,
भेद-भावना में भिन्नता का न प्रवेश है ।
नानाकार द्रव्य, गुण, धारी मिले नाचते हैं,
अन्तर दिखाने वाले देश का न लेश है ॥
औपाधिक-नाम-रूप-धारा महा-माया मिली,
माया—मानी—जीव जुड़े मायिक—महेश है ।
न्यारे न कहाओ, बनो ज्ञानी, मिलो शङ्कर से,
सत्यवादी-वेद का यही तो उपदेश है ॥ १ ॥

आदि, मध्य, अन्तहीन भूमा भद्र, भासता है,
पूरा है, अखण्ड है, असंग है, अलोल है ।
विश्व का विधाता परमाणु से भी न्यारा नहीं,
बिश्वता से बाहरी न ठोस है न पोल है ॥
एक निराकार ही की नानाकार कल्पना है,
एकता अतोल में अनेकता की तोल है ।
भेद हीन नित्य में सभेदों की अनित्यता है,
खोजले तू शंकर जो ब्रह्म की टटोल है ॥ २ ॥

एक में अनेकता, अनेकता में एकता है,
एकता, अनेकता का मेल चकाचूर है।
चेतना से जड़ताको, जड़ता से चेतना को,
भिन्न करे कौनसा प्रमाता—महाशूर है॥
ठोसको, न छोड़े पोल, पोल को न त्यागे ठोस,
ठोस नाचती है, टिकी-पोलसे न दूर है।
भावरूप-सत्ता में असत्ता है, अभाव-रूप,
शंकर यों अत्ता में महत्ता भरपूर है॥ ३॥

सत्य-रूप-सत्ता की महत्ता का न अन्त कहीं,
नेति नेति बार बार वेदने बखानी है।
चेतन-स्वयंभू सारे लोकों में समाय रहा,
जीव प्यारे-पुत्र हैं प्रकृति-महारानी है॥
जीवन के चारो फल बांटे भक्त-योगियों को,
पूरण प्रसिद्ध ऐसा दूसरा न दानी है।
शंकर जो राजा महाराजों का महेश उसी,
विश्वनाथ-ब्रह्म की बड़ाई मन मानी है॥४॥

पावक से रूप, स्वाद पानी से, मही से गन्ध,
मारुत से छूत, शब्द अम्बर से पाते हैं।
खाते हैं अनेक अन्न, पीते हैं पवित्र-पेय,
रोम, पाट, छाल, तूल, ओढ़ते, बिछाते हैं॥
अन्य प्राणियों को जाति-योग से मिले हैं भोग,
ज्ञान-सिद्ध-साधनों से मानव कमाते हैं।
शंकर दयालु-दानी देता है दया से दान,
पाय पाय प्यारे जीव जीवन बिताते हैं॥ ५॥

माने अवतार तो अनङ्गता की घोषणा है,
अंङ्गहीन सारे अङ्गियों का सिरमौर है।
पूज प्रतिमा तो विश्व-व्यापकता बोलती है,
नारायण-स्वामी का ठिकाना सब ठौर है॥
खोजें घने देवता तो एकता निषेध करे,
एक महादेव कोई दूसरा न और है।
अन्तको प्रपञ्च ही में पाया शुद्ध-शंकर जो,
भावना से भिन्न है न श्याम है, न गौर है॥ ६॥

एक मैं ही सत्य हूं, असत्य मुझे भासता है,
ऐसी अवधारणा, अवश्य भूल भारी है।
पूजते जड़ों को, गुण गाते हैं मरों के सदा,
कर्म अपनाये महा-चेतना विसारी है॥
मानते हैं दिव्य-दूत, पूत, प्यारे शंकर के,
जानते हैं नित्य-निराकार तन-धारी है।
मिथ्या-मत वालों को सचाई कब सूझती है,
ब्रह्म के मिलाप का विवेकी अधिकारी है॥ ७॥

योग साधनों से होगा चित्त का निरोध और,
इन्द्रियों के दर्पकी कुचाल रुक जावेगी।
ध्यान, धारणा के द्वारा सामाधिक-धर्म धार,
चेतना भी संयम की ओर झुक जावेगी॥
मूढ़ता मिटाय महामेधा का बढ़ेगा वेग,
तुच्छ लोक-लालच की लीला लुक जावेगी।
शंकर से पाय परा-विद्या यों मिलेंगे मुक्त,
बन्धन की वासना अविद्या चुक जावेगी॥ ८॥

अविद्यान्ध २०

(दोहा)

ऊत अविद्या के बने, पढ़ प्रामादिक-पाठ ।
ऊलें आपस में लड़ें, सब के उलटे ठाठ ॥ १ ॥

भूल की भरमार २१

(गीत)

भारी भूल मेरे,
भोले भूले भूले डोलें ॥ टेक ॥

डाल युक्ति के बाट न जिसको, तर्क-तुला पर तोलें ।
अन्धों की अटकल से उसको, टेक टिकाय टटोलें ॥
भा० भू० भो० भू० भू० डोलें ॥

पाय प्रकाश सत्य-सविता का, आंख उलूक न खोलें ।
अभिमानी अन्धेर अधम की, जाग जाग जय बोलें ॥
भा० भू० भो० भू० भू० डोलें ॥

पोच प्रपञ्च पसार प्रमादी, झंझट को झकझोलें ।
स्वर्ग-सहोदर-प्रेमामृत में, वज्र वैर-विष घोलें ॥
भा० भू० भो० भू० भू० डोलें ॥

हम तो शठता त्याग संगाती, सदुपदेश के होलें ।
शंकर समता की सरिता में, तन, मन, वाणी, धोलें ॥
भा० भू० भो० भू० भू० डोलें ॥ १ ॥

विशुद्ध-बोध २२

(दोहा)

खेल चुका खोटे, खरे, निपट खोखले खेल ।
आज मोह माया तजी, शंकर से कर मेल ॥ १ ॥

कूटस्थ-कूटोक्ति २३

(राजगीत)

कुछनहीं, कुछ में समाया, कुछ नहीं ।
कुछन कुछ का भेद पाया, कुछ नहीं ॥
एकरस कुछ है नहीं कुछ, दूसरा ।
कुछ नहीं बिगड़ा, बनाया, कुछ नहीं ॥
कुछ न उलझा, कुछ नहीं के, जाल में ।
कुछ पड़ा पाया, गमाया, कुछ नहीं ॥
बन गया कुछ और से कुछ, औररहा ।
जान कर कुछ भी जनाया, कुछ नहीं ॥
कुछ न मैं, तू कुछ नहीं, कुछ, और है ।
कुछ नहीं अपना, पराया, कुछ नहीं ॥
निधि मिली जिसकोन कुछके, मेलकी ।
उस अबुध के हाथ आया, कुछ नहीं ॥
वह वृथा अनमोल जीवन, खो रहा ।
धर्म-धन जिसने कमाया, कुछ नहीं ॥
अब निरन्तर मेल शंकर, से हुआ ।
कर सकी अनमेल माया, कुछ नहीं ॥ १ ॥

जड़ चेतन का मेल २४

(दोहा)

ज्ञान बिना होते नहीं, सिद्ध यथोचित कर्म ।
रचते हैं संसार को, जड़ चेतन के धर्म ॥ १ ॥

सद सन्मेलन २५

(भजन)

पाया सदसदुभय संयोग ॥ टेक ॥

चतुर चातुरी से कर देखो, अमित यत्न उद्योग ।
इनका हुआ न, है न, नहोगा, अन्तर युक्त वियोग ॥
पाया सदसदुभय संयोग ॥
कौन मिटावे जड़ चेतन का, स्वाभाविक-अतियोग ।
ठोस पोल से अलग न होगी, वृथा उपाय-प्रयोग ॥
पाया सदसदुभय संयोग ॥
अटका यही सकल जीवों से, बाधक--बन्धन-रोग ।
जीवन, जन्म, मरण के द्वारा, रहे कर्म फल भोग ॥
पाया सदसदुभय संयोग ॥
जीवन् मुक्त महा पुरुषों के, मान अमोघ-नियोग ।
धार विवेक बुद्ध बनते हैं, शंकर बिरले लोग ॥
पाया सदसदुभय संयोग ॥ १ ॥

वेदोक्त ब्रह्म २६

(दोहा)

भूलों की भरमार के, भूल भयानक भेद ।
बतलाता है ब्रह्म को, इस प्रकार से वेद ॥ १ ॥

ब्रह्म की विश्वरूपता २७

(भजन)

यों शुद्ध सच्चिदानन्द,
ब्रह्म को बतलाता है वेद ॥ टेक ॥
केवल एक अनेक बना है, निर्विवेक, सविवेक बना है,
रूपहीन बन गया रंगीला, लोहित, श्याम, सफ़ेद ।
ब्रह्मको बतलता है वेद ॥

टिका अखण्ड समष्टि-रूपसे, खण्डित विचरे व्यष्टि-रूपसे,
जड़ चैतन्य विशिष्ट-रूपसे, रहै अभेद सभेद।
ब्रह्मको बतलाता है वेद ॥

पूरण प्रेम-पयोधि प्रतापी, मङ्गल-मूल महेश मिलापी,
सिद्ध एक रस सर्व-हितैषी, कहीं न अन्तर, छेद।
ब्रह्मको बतलाता है वेद ॥

विश्व विधायक विश्वम्भर है, सत्य-सनातन श्रीशंकर है,
विमल-विचार-शील भक्तों के, दूर करे भ्रम खेद ॥
ब्रह्मको बतलाता है वेद ॥ १ ॥

ब्रह्मज्योति का प्रकाश २८

(दोहा)

प्यारे प्रभु की ज्योति का, देख अखण्ड प्रकाश।
सत्य भान हो जाय गा, मोह-तिमिर का नाश ॥ १ ॥

जागती ज्योति २९

(भजन)

निरखो नयन ज्ञान के खोल,
प्रभुकी ज्योति जगमगाती है ॥ टेक ॥

देखो! दमक रही सबठौर, चमके नहीं कहीं कुछ और,
प्यारी हम सब की सिरमौर, उज्वल अङ्कुर उपजाती है।
नि० न० ज्ञा० खो० प्र० जगमगाती है ॥

जिस ने त्यागे विषय-विकार, मन में धारे विमल-विचार,
समझा सदुपदेश का सार, उस को महिमा दरसाती है ॥
नि० न० ज्ञा० खो० प्र० ज्यो० जगमगाती है।

जिस को किया कुमति ने अन्ध, बिगड़ा जीवन का सुप्रबन्ध,
कुछ भी रहा न तप का गन्ध, झलके, पर न उसे पाती है।
नि० न० ज्ञा० खो० प्र० ज्यो० जगमगाती है ॥
जिस ने झंझट की झर झेल, परखे जड़ चेतन के खेल,
अपना किया निरन्तर मेल, शंकर उस को अपनाती है ॥
नि० न० ज्ञा० खो० प्र० ज्यो० जगमगाती है ॥ १ ॥

ईश्वर का आधिपत्य ३०

(दोहा)

स्वामी सब संसार का, वह अविनाशी एक ।
जिसके माया जाल में, उलझे जीव अनेक ॥१॥

ब्रह्मज्योति ३१

(मालतीवृत्त)

ज्योति अखण्ड निरञ्जन की, भरपूर प्रशस्त प्रकाश रही है ।
दिव्य-छटा निरखी जिस ने, उस ने दुविधा भ्रम की न गही है ॥
सिद्ध त्रिलोक बखान रहे, सब ने छवि एक अनन्य कही है ।
तू कर योग निहार चुका, अब शंकर जीवन मुक्त सही है ॥१॥

ब्रह्मविज्ञान ३२

दोहा

भेद न सूझे वेद में, जान लिया जगदीश ।
पूजे पग विज्ञान के, फोड़ कुमति का शीश ॥१॥

मिलाप की उमंग ३३

(सगणात्मक सवैया)

अबलों न चले उस पद्धति पै, जिसपै व्रत-शील-विनीत गये ।

वह आज अचानक सूझ पड़ी, भ्रम के दिन बाधक बीत गये ॥
प्रभु शंकर की सुधि साथ लगी, मुख मोड़ हठी विपरीत गये ।
चलते चलते हम हार गये, पर पाय मनोरथ जीत गये ॥१॥

जन्माद्यस्ययतः ३४

(दोहा)

होते हैं जिस एक से, हम सब के जन्मादि ।
सत्ता है उस ईश की, शुद्ध अनन्त, अनादि ॥ १ ॥

परमात्मा सर्व-शक्तिमान् है ३५

(सगणात्मक-सवैया)

जिसने सब लोक रचे सब को, उपजाय, बढ़ाय विनाश करे ।
सबका प्रभु, साथ रहै सब के, सब में भरपूर प्रकाश करे ॥
सब अस्थिर-दृश्य दुरें दरसें, सब का सबठौर विकाश करे ।
वह शङ्कर मित्र हितू सब का, सब दुःख हरे न हताश करे ॥१॥

ब्रह्म की व्यापकता ३६

(दोहा)

सर्व-शक्ति—सम्पन्न है, रचना रचे अनेक ।
साथ सर्व--संघात के, रहै एक-रस एक ॥१॥

ब्रह्म की निर्लेपता ३७

(भजन)

तुझ में रहै सर्व—संघात,
फिर भी सब से न्यारा तू है ॥टेक॥

उमगा ज्ञान, क्रिया का मेल, ठानी गौणिक टेलमटेल,

खोला चेतन, जड़ का खेल, इस का कारण सारा तू है।
तु० र० स० सं० फि० स० न्यारा तू है ॥
उपजा सार हीन संसार, आकर चार, अनेकाकार,
जिन में जीवों के परिवार, प्रकटे, पालन हारा तू है ॥
तु० र० स० सं० फि० स० न्यारा तू है ॥
सब का साथी, सब से दूर, सब में पाता है भरपूर,
कोमल, कड़े, क्रूर, अक्रूर, सब का एक सहारा तू है।
तु० र० स० सं० फि० स० न्यारा तू है ॥
जिन पै पड़े भूल के फन्द, क्या समझेंगे वे मतिमन्द,
उन को होगा परमानन्द, शंकर जिन का प्यारा तू है।
तु० र० स० सं० फि० स० न्यारा तू है ॥

ईश्वर का कर्तृत्व ३८

(दोहा)

सब जीवों का मित्र है, जो जगदीश पवित्र।
उपजावे, धारे, हरे, वह संसार विचित्र ॥ १ ॥

विश्वकी विश्वरचना ३९

(षट्पदीछन्द)

प्रकटे भौतिक-लोक, मेघ, तड़िता, ग्रह, तारे।
झील, नदी, नद, सिन्धु, देश, वन, भूधर भारे ॥
तन, स्वेदज, उद्भिज्ज, जरायुज, अण्डज, सारे।
अमित-अनेकाकार, चराचर जीव निहारे ॥
नव द्रव्यों के अमित-योगसे, उपजा सब संसार है।
इस अस्थिर के अस्तित्व का, शंकर तू करतार है ॥ १ ॥

ईश्वरका औदार्य ४०

(दोहा)

अपनालेता है जिसे, शंकर परमोदार ।
देता है उस जीवको, जीवनके फल चार ॥ १ ॥

परमात्माका पूरा प्यार ४१

(भजन)

जगदाधार दयालु उदार,
जिस पर पूरा प्यार करेगा ॥टेक॥

उस की विगड़ी चाल सुधार, सिर से भ्रम का भूत उतार,
दे कर मङ्गल-मूल-विचार, उर में उत्तम-भाव भरेगा ।
ज० द० उ० जि० पूरा प्यार करेगा ॥

दैहिक, दैविक, भौतिक, ताप, दाहक-दम्भ कुकर्म-कलाप,
अगले, पिछले, सञ्चित-पाप, लेकर साथ प्रमाद मरे गा ॥
ज० द० उ० जि० पूरा प्यार करेगा ॥

कर के तन, मन, वाणी, शुद्ध, जीवन धार धर्म अविरुद्ध ।
बन कर बोध-विहारी-बुद्ध, दुस्तर मोह-समुद्र तरेगा ॥
ज० द० उ० जि० पूरा प्यार करेगा ॥

अनुचित भोगोंसे मुख मोड़, अस्थिर विषय-वासना छोड़ ।
बन्धन जन्म, मरण, के तोड़, शंकर मुक्त-स्वरूप धरेगा ॥
ज० द० उ० जि० पूरा प्यार करेगा ॥ १ ॥

भूतेश्वर का भय और प्यार ४२

(दोहा)

जिसने जीता काल को, भूत किये भय भीत ।
वे प्यारे उस ईश के, जो न चलें विपरीत ॥ १ ॥

महादेव-रुद्र से सब डरते हैं ४३

(भजन)

जिस अविनाशी से डरते हैं,
भूत, देव, जड़, चेतन, सारे ॥ टेक ॥
जिस के डर से अम्बर बोले, उग्र मन्द-गति मारुत डोले,
पावक जले, प्रवाहित पानी, युगल-वेग वसुधा ने धारे ।
जि० अ० ड० भू० दे० ज० चे० सारे ॥
जिसका दण्ड दसों दिस धावे, काल डरे ऋतु-चक्र चलावे,
बरसें मेघ, दामिनी दमके, भानु तपे, चमकें शशि, तारे ।
जि० अ० ड० भू० दे० ज० चे० सारे ॥
मन को जिस का कोप डरावे, घेर प्रकृति को नाच नचावे,
जीव कर्म-फल भोग रहे हैं, जीवन, जन्म, मरण, के मारे ।
जि० अ० ड० भू० दे० ज० चे० सारे ॥
जो भय मान धर्म धरते हैं, शंकर कर्म-योग करते हैं,
वे विवेक-वारिधि बड़-भागी, बनते हैं उस प्रभु के प्यारे ।
जि० अ० ड० भू० दे० ज० चे० सारे ॥ १ ॥

रुद्ररोष ४४

(दोहा)

करता है जो पातकी, विधि निषेध का लोप ।
होता है उस नीच पै, शंकर प्रभु का कोप ॥१॥

रुद्र दण्ड ४५

(शुद्धगात्मक-राजगीत)

खलों में खेलते खाते, भलों को जो जलाते हैं ।
विधाता न्यायकारी से, सदा वे दण्ड पाते हैं ॥

प्रतापी तीन तापों से, प्रमत्तों को तपाता है।
कुटुम्बी, मित्र, प्यारे भी, बचाने को न आते हैं॥
अजी जो अङ्ग-रक्षा पै, न पूरा ध्यान देते हैं।
मरें वे नारकी पीड़ा, न रोगों से छुड़ाते हैं॥
प्रमादी, पोच, पाखंडी, अधर्मी, अन्ध-विश्वासी।
अविद्या के अँधेरे में, मतों की मार खाते हैं॥
अभागी, आलसी, ओछे, अनुत्साही, अनुद्योगी।
पड़े दुर्दैव को कोसें, मरे जीते कहाते हैं॥
पराये माल से मोधू, बने प्रारब्ध के पूरे।
मिलाते धूलि में पूंजी, कुकर्मों को कमाते हैं॥
दुराचारी, दुरारम्भी, कृतघ्नी, जालिया ज्वारी।
घमण्डी, जार, अन्यायी, कुलों को भी लजाते हैं॥
हठीले, हीज, अज्ञानी, निकम्मे मादकी, कामी।
गपोड़, दुर्गुणी, गुण्डे, प्रतिष्ठा को डुबाते हैं॥
कुचाली, चोर, हत्यारे, बिसासी, राज-विद्रोही।
प्रजा, राजा, किसीकी भी, न सत्ता में समाते हैं॥
बिचारी बालिकाओं को, वृथा वैधव्य के द्वारा।
घरों में जो रुलाते हैं, न वे खाते अघाते हैं॥
गिराते गर्भ रांडों के, बिगोते जो अहिंसाको।
गिरें वे ज्ञान-गंगा के, प्रवाहों में न न्हाते हैं॥
न पालें जो अनाथों को, खिलाते माल संडों को।
गढ़े में पुण्य की ऊंची, प्रथा को वे गिराते हैं॥
किसी भी आततायी का, कभी पीछा न छूटेगा।
हरें जो प्राण औरों के, गले वे भी कटाते हैं॥
बचेंगे शंकरागामी, दिनों में वे कुचालों से।
जिन्हें ये दण्ड के थोड़े, नमूने भी डराते हैं॥१॥

वैदिक धर्म ४६

(दोहा)

मंत्रों के मुनि योग से, अर्थ विचार विचार।
करते हैं संसार में, वैदिक—धर्म-प्रचार ॥१॥

अपौरुषेय वेद ४७

(गीत)

उस अद्वैत वेद की महिमा,
ठौर ठौर गुरु-जन गाते हैं ॥टेक॥

शब्द न जिस में नर भाषा के, भाव न भ्रम की परिभाषा के,
लिखा न कल्पित लेख पृथा से, लौकिक लोग न पढ़ पाते हैं।
उ० अ० वे० म० ठौ० गु० गाते हैं ॥

जिस के मंत्र विवेक बढ़ाते, मोह महीधर पै न चढ़ाते,
मेट अनर्थ, सदर्थ पसारें, ध्रुव-धर्मामृत बरसाते हैं ॥
उ० अ० वे० म० ठौ० गु० गाते हैं ॥

ज्ञान-योग—बल से बुध बांचें, कर्म-योग—अनुभव से जांचें,
विधि, निषेध कर न्यारे न्यारे, क्रम से सब को समझाते हैं।
उ० अ० वे० म० ठौ० गु० गाते हैं ॥

जो वैदिक उपदेश न होता, तो फिर कौन अमंगल खोता,
मनुज मान शिक्षा शंकर की, भव—सागर को तरजाते हैं ॥
उ० अ० वे० म० ठौ० गु० गाते हैं ॥१॥

ब्रह्मोपदेश की व्यापकता ४८

(दोहा)

व्यापक हैं संसार में, विधि, निषेध विख्यात।
शिक्षा मानव-जाति को, मिलती है दिन रात ॥१॥

नैसर्गिक-शिक्षा-निदर्शन ४९

(शंकर-छन्द)

जिस की सत्ता भाँति भाँति के, भौतिक-दृश्य दिखाती है।
जीवों को जीवन धारण के, नाना नियम सिखाती है ॥
सर्व-नियन्ता, सर्व-हितैषी, वह चेतन-भुवनेश।
नैसर्गिक-विधि से देता है, हम सब को उपदेश ॥

न्याय-शील-शंकर जीवों से, कहिये क्या कुछ लेता है।
सुखदा-सामग्री का सब को, दान दया कर देता है ॥
सर्व सृष्टि-रचना को देखो, नयन सुमति के खोल।
ठौर ठौर शिक्षा मिलती है, गुरु-मुख से बिन मोल ॥२॥

देखो भानु अखण्ड-प्रतापी, तम को मार भगाता है।
तेज हीन तारा-मण्डल में, उज्ज्वल-ज्योति जगाता है ॥
ज्ञान-उजाला बांट रहा है, यों प्रभु परम-सुजान।
तत्व-तेज धारी बनते हैं, भ्रम-तम त्याग अजान ॥ ३ ॥

तारे भी तम-तोप रात में, दिव्य-दृश्य दरसाते हैं।
चन्द्र बिम्ब की भांति उजाला, बांट सुधा बरसाते हैं ॥

यों अपने ज्ञानी पुरुषों से, पढ़ कर मंत्र-प्रयोग ।
छोड़ अविद्या सुख पाते हैं, गुरु-मुख लौकिक लोग ॥ ४॥

जो शिव से स्वाभाविक-शिक्षा, जाति क्रमागत पाते हैं ।
सुलभ साधनों से वे प्राणी, जीवन-काल बिताते हैं ॥
मानव-जाति नहीं जीती है, उन सब के अनुसार ।
साधन पाया हम लोगों ने, केवल विमल-विचार ॥ ५ ॥

जो योगी जिस ज्ञेय-वस्तु में, पूरी लगन लगाता है ।
मर्म जान लेता है उस का, मन माना फल पाता है ॥
वह अपने आविष्कारों का, कर सब को उपदेश ।
ठीक ठीक समझा देता है, फिर फिर देश विदेश ॥ ६ ॥

जो बड़भागी ब्रह्म-ज्ञान के, जितने टुकड़े पाते हैं ।
वे सब साधारण लोगों को, देकर बोध बढ़ाते हैं ॥
तर्क-सिद्ध-सद्भाव अनूठे, विधि, निषेध-मय-मंत्र ।
संग्रह-ग्रन्थाकार उन्हीं के, प्रकटे प्रचलित तंत्र ॥ ७ ॥

लेख अनोखे, भाव अनूठे, अक्षर, शब्द, निराले हैं ।
दुर्गम-गूढ़-ब्रह्म-विद्या के, बिरले पढ़ने वाले हैं ॥
ज्ञानागार घने भरते हैं, विषय बटोर बटोर ।
पाठक-वृन्द नहीं पावेंगे, इति कर इस का छोर ॥ ८ ॥

तर्क, युक्तियों की पटुता से, जब जड़ता को खोते हैं ।
सत्य-शील वैदिक-विद्या के, तब अधिकारी होते हैं ॥
बाल-ब्रह्मचारी पढ़ते हैं, सोच, समझ, सुन, देख ।
पाठ-प्रणाली जांच लीजिये, पढ़ कतिपय उल्लेख ॥ ९ ॥

जन्म-काल में जिस के द्वारा, जननी का पय पीते थे।
साथ वही साधन लाये थे, इतर गुणों से रीते थे॥
ज्ञान-योग से गुरु लोगों के, उमगे विशद- विचार।
कर्म-योग बल से पाते हैं, तप-तरु के फल चार॥ १०॥

जांच लीजिये जितने प्राणी, जो कुछ बोला करते हैं।
वे उस भांति मनो भावों की, खिड़की खोला करते हैं॥
स्वाभाविक-भाषाका हम को, मिला न प्रचुर-प्रसाद।
शब्द पराये बोल रहे हैं, कर वर्णिक-अनुवाद॥ ११॥

अपने कानों में ध्वनि-रूपी, जितने शब्द समाते हैं।
मुख से उन्हें निकालें तो वे, वर्ण-रूप बनजाते हैं॥
वेही अक्षर कहलाते हैं, स्वर—व्यञ्जन-समुदाय।
यों आकाश बना भाषण का, कारण, सहित-उपाय॥ १२॥

जिनके स्वाभाविक शब्दोंको, पास, दूर, सुनपाते हैं।
वे अनुभूत हमारे सारे, अर्थ समझ में आते हैं॥
यों शिव से भाषा रचने का, सुनकर उक्त-उपाय।
कल्पित-शब्द साथ अर्थों के, समुचित लिये मिलाय॥ १३॥

भूतों के गुण और भूत यों, दशक, दशों का जाना है।
इन में नौ प्रत्यक्ष शेष को, अटकल ही से माना है॥
तारतम्यता देख इन्हीं की, उपजा गणित-विवेक।
आंक लिये नौअङ्क असङ्गी, शून्य सकल-घर एक॥ १४॥

जिन के खुर, पंजे, पैरों के, चिन्ह मही पर पाते हैं।
पामर, पक्षी, मानवादि वे, याद उसीदम आते हैं॥

जब यों अर्थ बताते देखे, अमित चिन्ह ऋजु बङ्क ।
मान लिये तब सङ्केतों में, लिख लिख अक्षर, अङ्क ॥१५॥

*नीचे, मध्यम, ऊँचे स्वर से, कुक्कुट बांग लगाता है ।
जागे आप सदैव सबों को, पिछली रात जगाता है ॥
तीन भांति के उच्चारण का, समझे सरल प्रयोग ।
ब्रह्म-काल में उठना सीखे, इस विधि से हम लोग ॥१६॥

+जागें पिछली रात प्रभाती, राग मनोहर गाते हैं ।
हेल मेल से जल-क्रीडा को, कारण्डव सबजाते हैं ॥
यों सीखे प्रभु के गुण गाना, सुन कर स्वर गन्धार ।
भानूदय से पहले न्हाना, तरना विविध-प्रकार ॥१७॥

आतप-ताप स्नेह-रसों को, मेघ-रूप कर देता है ।
सार-सुगन्ध सर्व- द्रव्यों के, मारुत में भर देता है ॥
होते हैं जल, वायु, शुद्ध यों, बल-वर्द्धक, अनुकूल ।
भानु-देव से सीखा हम ने, हवन-कर्म-सुख-मूल ॥१८॥

देखो वैदिक-यज्ञकुण्ड में, हव्य-कवलिका पाता है ।
न्याय-धर्म से सब देवों को, सार-भाग पहुंचाता है ॥
भस्म छोड़ कर होजाता है, हुतभुक् अन्तर धान ।
दान करें यों विद्या-धन का, बुध-याजक यजमान ॥१९॥

---

*अनुदात्त=नीचेस्वरसे — स्वरित=मध्यम स्वरसे — उदात्त=ऊंचेस्वरसे — यों ३ तीन प्रकारका शब्दोच्चारण होता है ।
जोकि कुक्कुट से सीखागया है ।

+कारण्डव (बतख) ये पक्षी ब्रह्ममुहूर्त में उठकर इकट्ठे होकर गाते हुये स्नान को जाते हैं ।

नीर मेघ से, मेघ भाप से, भाप नीर बन जाता है ।
पिघले, जमे, उड़े, यों पानी, कौतुक तीन दिखाता है ॥
ये रस, अन्न, प्राण, दाता के, द्रव, दृढ़, वायु, विकार ।
देखो ! देवो, ऋषियो, पितरो, करिये जगदुपकार ॥२०॥

ओषधि, अन्न, आदि सामग्री, सुखदा सब को देती है ।
अपने उपजाऊ बीजों को, सावधान रख लेती है ॥
जीव जन्म लेते मरते हैं, जिस पर जीवन-भोग ।
उस वसुन्धरा-माता-की सी, सुगति गहो गुरु-लोग ॥२१॥

देखो ? फल-स्वादिष्ट-रसीले, अपने आप नखाते हैं ।
बाँट बांट सर्वस्व सबों को, अचल-प्रतिष्ठा पाते हैं ॥
छाया-दान दिया करते हैं, प्रखर-ताप शिर धार ।
सीखो ! पादप सिख लाते हैं, करना पर उपकार ॥२२॥

*तीन भांति के जंगम-प्राणी, जो कुछ रुचि से खाते हैं ।
भिन्न-भाव से भेद उसी के, अन्न अनेक कहाते हैं ॥
वे अभक्ष्य हैं जान लिये जो, गत-रस-स्वाद-सु-वास ।
परखाता है ईश सबों को, बदन, घ्राण, रच पास ॥२३॥

आमिष-भक्षी क्रूर-तामसी, निष्ठुर, हिंसक होते हैं ।
कन्द, मूल, फल खाने वाले, उग्र-विलास न बोते हैं ॥
पल, फल, खोओं को पाते हैं, उभया चरण-विशिष्ट ।
ऐसा देख निरामिष-भोजी, सदय बनों सब शिष्ट ॥२४॥

* तीन भांति के जंगम-प्राणी = स्वेदज १ अण्डज २ जरायुज ३ —

शब्द, गन्ध, आलोक, दूर से, कर्ण, घ्राण, दृग, पाते हैं ।
तीनों के उप-भोग किसी के, मन को नहीं तपाते हैं ॥
जिह्वा, सिस्न, करें विषयों से, निपट–निरन्तर योग ।
* विधि की बाग देख दोनों के, समुचित करो प्रयोग ॥२५॥

विधि की परिपाटी से न्यारे, जितने प्राणी चलते हैं ।
वे आजन्म निषेधानल के, तीव्र-ताप से जलते हैं ॥
ऊलें उद्धत न्याय–धर्म से, रहित रहैं बिन जोड़ ।
देखो झुण्ड मृगी मृगादि के, तज पशु-पन की होड़ ॥२६॥

सारसादि चिड़ियों के जोड़े, दम्पति-भाव दिखाते हैं ।
जोड़े से रहने की हम को, उत्तम-रीति सिखाते हैं ॥
देते फिरें गृहस्थ-धर्म का, परमोचित उपदेश ।
इन के प्रेमाचार–चक्र में, हिल मिल करो प्रवेश ॥२७॥

जोड़ मिले मादा, नर प्राणी, प्रेमादर्श विचरते हैं ।
मिथ्याहार–विहार न जाने, अत्याचार न करते हैं ॥
गर्भाधान करें व्रत–धारी, पाय समय सविधान ।
त्यागें भोग प्रसव लों दोनों, समझो रसिक-सुजान ॥२८॥

जिन के जोड़ नहीं जन्मे वे, अस्थिर-मेल मिलाते हैं ।
नारी एक घने नर घेरें, खेल असभ्य खिलाते हैं ॥

---

* विधि की "बाग" देख = जिह्वा (जीभ) सिस्न (मूत्रेन्द्रिय) ये दोनों विषया धार से निरन्तर–योग कर के विषय–लाभ करते हैं अतएव अनुचित व्यापारों से औरों को दुःख देते हैं – परमात्मा ने इन दोनों को " बाग " (लगाम) लगादी है जिसे देख कर मनुष्य इन को वश में रक्खे क्योंकि इन का यथेच्छाचार, अनर्थ का कारण है ।

कट्टर कामुक हो जाते हैं, विकल-अङ्ग विकराल ।
देखो श्वान, शृगाल आदि को, चलो न अनुचित चाल ॥२९॥

\+ जिन जोड़ों के जीव अभागे, एक एक मरजाते हैं ।
शेष बचे वे जाति-वृन्द को, शोक-पुकार सुनाते हैं ॥
रचते हैं रंडुआ, रांडों के, सकल-पञ्च पुनि जोड़ ।
यों उद्धारो विधवा-दल को, कुमत, पन्थ, छल, छोड़ ॥३०॥

* मानव-जाति सुता, पुत्रों को, साथ नहीं उपजाती है ।
दो कुनबों से कन्या, बर को, लेकर जोड़ मिलाती है ॥
वे दुलही, दुलहा होते हैं, नवल-गृही मन ठान ।
रखते हैं दो परिवारों से, हिल-मिल मेल समान ॥३१॥

चारा चुगते अण्डज-बच्चे, दूध जरायुज पीते हैं ।
मात पिता अथवा माता के, पास बास कर जीते हैं ॥

\+ जोड़े वाले जीव, खण्डित जोड़ों के फुट्टल रांड और रंडुओं को मिला कर, पुनः जोड़े बना लेते हैं — एक बार किसी शिकारी ने सारस के एक जोड़े में से एक पक्षी को मार डाला, वह बचा हुआ विहंग कई दिनों तक चिल्लाता रहा, एक दिन उस के पास आसपास के अनेक सारस आये और शाम को चले गये, उस स्थान पर एक जोड़ा रह गया । इस से सिद्ध है कि उस फुट्टल का जोड़ा मिला गये! यह दृश्य ग्रन्थकार तथा अन्य अनेक मनुष्यो ने देखा था ।

* मनुष्य जाति की स्त्रियां लड़की लड़कों के जोड़े नहीं जनतीं कभी दैवात् ऐसा होता भी है तो वह नियम नहीं कहा जासकता । मनुष्यों को जोड़े से रहने की शिक्षा मिली है इसी से दो कुनबों से लड़की लड़के लेकर जोड़े मिलाये जाते हैं परन्तु उन दोनों परिवारों से नाता संबन्ध स्त्री पुरुष दोनों का समान रहता है — दोनों ओर एक से शब्द बोले जाते हैं ।

वे समर्थ होते ही उन से, अलग रहैं तज सङ्ग ।
यों कृतघ्नता का मनुजों पै, चढ़े न कुयश–कुरङ्ग ॥३२॥

वस्त्र बनाने की पटुता के, मकड़ी दृश्य दिखाती है ।
सूत कात कर ताना, वाना, बुनना सदा सिखाती है ॥
गोल गोल भीतों पर पोते, धवला—वरण—अनेक ।
कागद की रचना का सूझा, हम को सरल–विवेक ॥३३॥

न्योले, मूषिकादि बिल खोदें, तन्तुक जाल बिछाते हैं ।
तोते, चटके आदि पखेरू, कोटर, झोंझ, बनाते हैं ॥
घरुआ रचें घिरोली, चिड़े, कच कच कीचड़ लाय ।
यों हम गेह बनाने सीखे, निरख अनेक उपाय ॥३४॥

अपने मान अन्य जीवों के, विवरों में घुस जाते हैं ।
खोज खोज रहने वालों को, खा कर खोज मिटाते हैं ॥
कालकूट उगलें औरों के, बन कर अन्तिम–काल ।
रक्षा करिये उरगों कीसी, गहो न गृह-पति चाल ॥३५॥

देख लीजिये सब जीवों को, नेक न ठाली रहते हैं ।
भोगें भोग दरिद्रासुर की, भूखे मार न सहते हैं ॥
करते हैं उद्योग अड़ीले, कुल–पद्धति अपनाय ।
तो हम क्यों आलस्य न छोड़ें, शुभ साधन बल-पाय ॥३६॥

नाड़ी और नसों से जिन के, अङ्ग रसादिक पाते हैं ।
जन्म धार जीवन को भोगें, देह त्याग मरजाते हैं ॥
ज्ञान, क्रिया धारी उपजाते, निज तन से तन अन्य ।
वे सजीव–प्राणी पहँचानें, परख चराचर धन्य ॥३७॥

रचना एक विश्वकर्मा की, चारों ओर चमकती है ।
इस में विद्या भाँति भाँति की, भद्राधार दमकती है ॥
शिल्प, कलाकारी, ज्योतिष के, उमग रहे सब अङ्ग ।
उठते हैं शिक्षा—सागर में, विविध—प्रसङ्ग—तरङ्ग ॥३८॥

जितने पुण्य-श्लोक-प्रतापी, जीवन्—मुक्त कहाते हैं ।
वे बुध—बुद्ध महाविद्या के, शुद्ध—प्रवाह बहाते हैं ॥
ऐसे गुरुओं से पढ़ते हैं, सब निर्धन, धनवान ।
किस को शिक्षा देसकते हैं, गुरु-कुल पण्य समान ॥३९॥

जो कवि कहै इन्हीं बातों को, तो जीवन चुक जावेगा ।
पर प्यारे के उपदेशों का, अन्तिम-अंक न आवेगा ॥
सर्व—शिरोधर वेदों के ये, आशय—अटल—अनूप ।
जानो भावभरीकविता को, निपट निदर्शन—रूप ॥४०॥

जो जन इन प्यारे पद्यों के, अर्थ यथा-विधि जानेंगे ।
वे इस नैसर्गिक-शिक्षा को, सत्य—सनातन मानेंगे ॥
जिन को भाव नहीं भावेंगे, परम—[illegible]-मूढ़ ।
वे समझेंगे शंकर को भी, कुकवि मनोमुख-मूढ़ ॥४१॥

अपौरुषेय-पद्धति-प्रतीक ५०

(दोहा)

हे शंकर स्वामी तुही, मङ्गल-मूल-महेश ।
पाया जीव-समूह ने, गुरु तेरा उपदेश ॥१॥

नोट—यदि नीरोगता-पूर्वक मेरा जीवन शेष रहा तो "नैसर्गिकशिक्षा" नामक एक स्वतंत्र ग्रन्थ रच कर पाठक महाशयों की सेवा में भेंट किया जायगा । सिद्ध-मनोरथ होना परमात्मा के अधीन है । (शंकर)

पावस-पञ्चाशिका ५१

(रौलाछन्द)

शंकर देख ! विचित्र, सृष्टि-रचना शंकर की ।
बोल ! किसे कब थाह, मिली संसृति-सागर की ॥
जड़, चेतन, के खेल, मनोहर—दृश्य खरे हैं ।
इन में मङ्गल—मूल, निरे उपदेश भरे हैं ॥ १ ॥

इस प्रसंग के अङ्ग, अखिल-विद्या के घर हैं ।
अर्थ-अमोघ-विशुद्ध, शब्द-अद्भुत-अक्षर हैं ॥
इस का अनुसन्धान, यथा-सम्भव जब होगा ।
अनुभवात्मक—ज्ञान, अन्यथा तब कब होगा ? ॥२॥

स्वाभाविक-गुण-शील, अन्य सब जीव निहारे ।
पर मनुष्य को मंत्र, मिले जड़, चेतन, सारे ॥
ब्रह्म-शक्ति जिस भाँति, यथा-विधि सिखा रही है ।
पावस के मिस दिव्य, निदर्शन दिखा रही है ॥ ३ ॥

ऊपर को जल सूख, सूख कर उड़ जाता है ।
सरदी से सकुचाय, जलद-पदवी पाता है ॥
पिघलावे रवि-ताप, धरा-तल पै गिरता है ।
बार बार इस भाँति, सदा हिरता फिरता है ॥ ४ ॥

पाय पवन का योग, घने घन घुमड़ाते हैं ।
कर किरणों से मेल, विविध-रङ्गत पाते हैं ॥
समझो, जिस के पास, प्रकाश न जा सकता है ।
क्या वह भौतिक-भाव, रङ्ग दिखला सकता है ॥ ५ ॥

चपला-चञ्चल-चाल, दमकती, दुर जाती है ।
बज्र--घात घन-घोर, गगन में पुर जाती है ॥
दोनों चल कर साथ, विषम--गति से आते हैं ।
प्रथम उजाला देख, शब्द फिर सुन पाते हैं ॥ ६ ॥

जब दिनेश की ओर, झोर--झरने झड़ते हैं ।
इन्द्र-चाप तब अन्य, घने--घन पै पड़ते हैं ॥
नील, अरुण के साथ, पीत छवि दिखलाते हैं ।
हम को मिश्रित--रंग, बनाना सिखलाते हैं ॥ ७ ॥

जब चादर सा अभ्र, गगन में तन जाता है ।
दिव्य-परिधि का केन्द्र, इन्दु तब बनजाता है ॥
शशि का कुण्डल-गोल, समझ में आया जब से ।
बुध-मण्डल ने वृत्त,--विधान बनाया तब से ॥ ८ ॥

भूधर से सब श्याम, धवल--धाराधर धाये ।
घूम घूम चहुँ ओर, घिरे गरजें झर लाये ॥
वारि--प्रवाह अनेक, चले अचला पर दीखे ।
इस विधि कुल्या, कूल, बहाना हम सब सीखे ॥ ९ ॥

झाबर, झील, तड़ाग, नदी, नद, सागर, सारे ।
हिल--मिल एकाकार, हुए पर हैं सब न्यारे ॥
सब के बीच विराज, रहा पावस का जल है ।
व्यापक इस की भांति, विश्व में ब्रह्म-अचल है ॥१०॥

निरख नदी की बाढ़, वृष्टि पिछली पहचानी ।
समझे मेघ निहार, अवस बरसेगा पानी ॥

प्रकट भूमि की चाल, करे अस्तोदय रवि का।
यों अनुमान-प्रमाण, मिला पावस की छवि का ॥११॥

अँधियारी निशि पाय, विचरते हैं चरते हैं।
दोनों परघर तोड़, फोड़ ऊजड़ करते हैं॥
इन का सिद्ध-प्रसिद्ध, चरित-साधर्म्य घना है।
अटके चोर, उलूक, उड़ें उपमान बना है ॥१२॥

मल, गोबर के ग्रास, पाय गप गप खाते हैं।
गढ़ गढ़ गोले गोल, लुड़कते लुड़काते हैं॥
गुबरीले इस भांति, क्रिया-विधि जो न जनाते।
तो वटिका कविराज, कहो किस भांति बनाते ॥१३॥

उलहे पादप-पुञ्ज, पाय सुख-रस चौमासा।
केवल आक अचेत, पड़े जल गया जवासा॥
समझे, जो प्रतिकूल, सलिल, मारुत पाता है।
रहता है वह रुग्ण, त्याग तन मरजाता है ॥१४॥

अधिक अंधेरी रात, झमक+झिंगुर झिंगारें।
तिलका, तान उड़ाय, रहे निशिअलि गुंजारें॥
यदि ये गाल फुलाय, राग अविराम न गाते।
तो बरुआ स्वर साध, बेणु, बंसुरी न बजाते ॥१५॥

जल में जोंक, भुजङ्ग, भूमि तल पै लहराते।
फुदकें मेंडक, काक, कुदकती चाल दिखाते॥

+ झिंगुर = झिल्ली - मंजीरा १ - तिलका = चित्तीदार कीट - चचैया। निशिअलि = बड़ा गुबरीला जो रात को गुंजारता हुआ उड़ता है

मन्द–मन्द–गति हंस, कबूतर की जब जानी।
तब तो धमनी बात, पित्त, कफ की पहंचानी ॥१६॥

दिन में विचरें साथ, रहें रजनी भर न्यारे।
सरिता की इस पार, और उस पार पुकारे ॥
यों चकई, चक, जोड़, सुधा, विष, बरसाते हैं।
मिलने का सुख, दुःख, बिरह का दरसाते हैं ॥१७॥

चपला के चर–दूत, कि रजनी-पति के चेरे।
चम चम चारों ओर, चमकते हैं बहुतेरे ॥
जो तम का उर फाड़, तेज खद्योत न भरते।
तो हम दिये जलाय, अंधेरा दूर न करते ॥१८॥

पिस्सुक, मच्छर, डांस, कूतरी, खटमल, काटें।
दिन में रहें अचेत, रात भर खाल उपाटें॥
यों अविवेक—प्रधान, महातम की बनिआई।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, अटके दुखदाई ॥१९॥

दीपक पै कर प्यार, पतङ्ग प्रताप दिखाते।
त्याग त्याग तन प्राण, प्रीति-रस-रीति सिखाते॥
जाना अविचल–प्रेम, निठुर से जो करते हैं।
वे उस प्रिय के रूप, अग्नि में जल मरते हैं ॥२०॥

पिछली रात सचेत, आंख उठ कुक्कुट खोलें।
अब सब सोते जाग, पड़ें इस कारण बोलें ॥
सुनते ही शुभ–नाद, दिवाचर नींद विसारें।
वक्ता स्वर अनुदात्त, उदात्त, स्वरित उच्चारें ॥२१॥

दिन में बिकसें कंज, पाय रजनी सकुचाते ।
निशि में खिलें कुमोद, दिवस में कोश दुराते ॥
ये रवि, शशि के भक्त, यथा क्रम सकुचें फूलें ।
यों सामयिक-सुकर्म, करें हम लोग न भूलें ॥२२॥

प्राण-पवन को रोक, भेक जीवित रहते थे ।
बिवरों में चुप चाप, घोर आतप सहते थे ॥
अब तो पाय अगाध,-सलिल मंगल गाते हैं ।
इन से सीख समाधि, सिद्ध मुनि सुख पाते हैं ॥२३॥

बगले ध्यान लगाय, मौन-मुनि बन जाते हैं ।
मन मैले तन-श्वेत, पकड़ मछली खाते हैं ॥
साधु-वेष-बटमार,-मूढ़ इस भांति बने हैं ।
ठग पाखण्ड प्रमाद, भरे बक-वृत्ति घने हैं ॥२४॥

कारण्डव कलहंस, करें जल-केलि न हारें ।
पनडुब्बी चहुं ओर, फिरें फिर डुबकी मारें ॥
जो हम इन के काम, सीख अभ्यास न करते ।
कूद कूद कर तो न, ताल नदियों में तरते ॥२५॥

किचुआ-अन्ध-अनेक,-अधोमुख गाढ़ रहे हैं ।
निगल रहे जो कीच, वही मल काढ़ रहे हैं ॥
स्वाभाविक निज धर्म, जगत को जता रहे हैं ।
बस्ति-कर्म इस भांति, विलक्षण बता रहे हैं ॥२६॥

इन्द्रबधू—कल-कीट, अरुण पाये मन भाये ।
समझें विधि ने लाल, प्रवाल सजीव बनाये ॥

इन का कुनबा रंग, रहा उपजा जंगल में।
हम ने भी यह रङ्ग, ढङ्ग ढाला मखमल में ॥२७॥

विविध अनूठे-रूप, रङ्ग धारण करती हैं।
सांग अनेक प्रकार, तितिलियां क्योंभरतीहैं॥
जो इन के अनुसार, ठीक अभ्यास न करते।
तो नट नाटक में न, वेष मन माने धरते ॥ २८॥

अब गिजाइयां देख, पौध इन की बढ़ती है।
पकड़ एक को एक, बना बाहन चढ़ती है॥
आरोहण इस भांति, कई ढब का जब दीखा।
तब तो चढ़ना अश्व, आदि पर हम ने सीखा ॥ २९॥

उगलें तार पसार, बुनाई से लग पड़ना।
जटिल फन्द में फांस, फांस आखेट पकड़ना॥
मकड़ी ने अन-मोल, अनेक सुदृश्य दिखाये।
तन्तु, वस्त्र, गुण, जाल, बनाने सविधि सिखाये ॥३०॥

पहले से सुप्रबन्ध, यथोचित कर लेते हैं।
कर उद्योग अनाज, विवर में भर लेते हैं॥
वर्षाभर वह अन्न, चतुर चिउंटे खाते हैं।
धन सञ्चय का लाभ, भोग-सुख समझाते हैं ॥३१॥

सारस भोग-बिलास, सदा सुख से करते हैं।
इन की भांति अनेक, नभग जोड़ चरते हैं॥
धन्य पवित्र-चरित्र, अनामय-द्विज जीते हैं।
जान, मान गृह-धर्म, प्रेम-रस हम पीते हैं ॥३२॥

नाचें मगन मयूर, मोरनी मन हरती हैं ।
पी पी पिय-चख-नीर, गर्भ धारण करती हैं ॥
जो न थिरकते रास, रंग रच रसिया केकी ।
तो न मटकते भांड़, षण्ढ,कत्थक,अविवेकी ॥३३॥

स्वांति-सलिल की चाह, चहकते चातक डोलें ।
अन्योदक—अबलोक, तृषातुर चोंच न खोलें ॥
अटल-टेक से सिद्ध,-मनोरथ कर लेते हैं ।
प्रण-पालन की धीर, सुमति-सम्मति देते हैं ॥३४॥

अपनी सन्तति काक,-कृपण से पलवाती है ॥
पेड़ पेड़ पर बैठ, मुदित मङ्गल गाती है ॥
कोयल की करतूति, चतुर अबला गहती है ।
तनुज धाय को सोंप, आप युवती रहती है ॥ ३५ ॥

कब देखा सहवास, प्रकट कौओंका कहिये ।
वायस-व्रत की वीर, बड़ाई करते रहिये ॥
जो इन के प्रतिकूल, चाल चल ते नर नारी ।
तो पशु-दल की भांति, न रहती लाज हमारी ॥ ३६ ॥

जिन के भीतर धूप, न जाय न शीत सतावे ।
बर से मूसल-धार, मेह पर बूँद न आवे ॥
गेह रचें सुख-धाम, चतुर चटकों के जाये ।
हम ने इन का काम, देख तृण-मण्डप छाये ॥ ३७ ॥

मौन अधोमुख भीग, रहे वानर मन मारें ।
पंख निचोड़ निचोड़, द्रुमों पर मोर पुकारें ॥

समझे जितने जीव, न सदन बनाते होंगे ।
वे सब इन की भांति, अवस दुख पाते होंगे ॥ ३८ ॥

आपस में सब श्वान, अकड़ ते हैं लड़ते हैं ।
कुतियों को कर तङ्ग, उलझ ने को अड़ते हैं ॥
खाय मदन की मार, पुकारें विकल-कुयोगी ।
बिन विवाह सम्बन्ध, न किस की दुर्गति होगी ॥ ३९ ॥

सब को ऊसर, डांग, शैल, बन बांट दिये हैं ।
उपजाऊ चक-बार, धरातल छांट दिये हैं ॥
विधि ने मंगल-मूल, यथोचित न्याय किया है ।
कृषि द्वारा हम लोग, जियें उपदेश दिया है ॥ ४० ॥

काढ़ कांप-बिकराल, सबल-शूकर आते हैं ।
खोद खोद कर खेत, गांठ-गुड़हर खाते हैं ॥
जो इन के दृढ़-तुण्ड, न भूतल मुण्ड उड़ाते ।
तो कुल-वीर किसान, कभी हल जोत न पाते ॥ ४१ ॥

फूल, फले, बन, बाग़, सरस-हरियाली छाई ।
वसुधा ने भरपूर, सस्य-मय सम्पति पाई ॥
उद्यम की जड़ मुख्य, जगत-जीवन खेती है ।
एक बीज उपजाय, बहुत से कर देती है ॥ ४२ ॥

बेलि, लता, तरु, गुल्म, पसारें छदन छवीले ।
पल्लव लटकें फूल, फली, फल, धार फवीले ॥
जो हम को करतार, न सुन्दर दृश्य दिखाता ।
तो कृत्रिम-फुलवाड़, बिरचना कौन सिखाता ॥ ४३ ॥

उपजे छत्रक–पुञ्ज, सुकोमल श्वेत सुहाये ।
इन्द्र-फलक-पद पाय, कुकुरमुत्ता कहला ये ॥
यदि इन के आकार, गुणी-जन देख न पाते ।
तो फिर छतरी, छत्र, कहो किस भांति बनाते ॥ ४४ ॥

मूल, दण्ड, दल, गोंद, फूल, फल, सार, रसीले ।
बीज, तेल, तृण, तूल, गन्ध, रँग, काठकसीले ॥
कर ते हैं दिन, रात, दान प्रिय–पादप सारे ।
सीखे परउपकार, इन्हीं से सुहृद् हमारे ॥ ४५ ॥

जिन की घोर पुकार, सदा सब सुन पाते हैं ।
वे बिन जीव, सजीव, सकल समझे जाते हैं ॥
यदि स्वाभाविक-शब्द, अर्थ अपने न बताते ।
कल्पित भाषण तो न, मनोगत भाव जताते ॥ ४६ ॥

फूल गये अब कांस, जरा पावस पर छाई ।
जलदों ने जय पाय, कूच की गरज सुनाई ॥
केश पकाय असंख्य,–वृद्ध-जन मर जाते हैं ।
बिरले घन की भांति, सर्व-हित कर जाते हैं ॥ ४७ ॥

अब लों जितना भाव, जांच कर जान लिया है ।
क्या अनुभव का अन्त, वही बस मान लिया है ॥
नहीं नहीं जिस भांति, सुमति की उन्नति होगी ।
तदनुसार उद्योग, करेंगे गुरु—जन योगी ॥ ४८ ॥

अमित ज्ञान की कौन, इतिश्री कर सकता है ।
सागर, गागर में न, कभी भी भर सकता है ॥

जिन को तत्व-प्रकाश, मिला है शिव-सविता से।
उन का अनुसन्धान, बढ़ेगा इस कविता से ॥ ४९ ॥

वैदिक-मंत्र-समूह, अमिति-विद्या का घर है।
पावस का उपदेश, बानगी सा लघु-तर है ॥
कवि का जीवन-काल, अभी यदि शेष रहैगा।
तो पद पाठ-प्रसङ्ग, कभी कुछ और कहैगा ॥ ५० ॥

सबल-ब्रह्म ५२

(दोहा)

ब्रह्म सच्चिदानन्द का, देखा सबल स्वरूप।
शंकर तू भी होगया, परम रङ्क से भूप ॥ १ ॥

सगुण-ब्रह्म ५३

(षट्पदीछन्द)

प्रकटे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, धार तू।
सर्व, सर्वसंघात, ख, मारुत, अग्नि, आप, भू ॥
शुद्ध-सच्चिदानन्द, विश्व-व्यापक, बहुरंगी।
मन, दिगात्मा, काल, सत्त्व, रज, तम, का संगी ॥
हे अद्वितीय! तू एक ही, अविचल, चले अनेक में।
यों पाया शंकर को तुही, शंकर बिमल-विवेक में ॥१॥

पुरुष-प्रकृति का मेल ५४

(सोरठा)

समझा चेतन और, जान लिया जड़ और है।
युगल एक ही ठौर, दरसें भिन्न, अभिन्न से ॥१॥

प्रपंच-पंचक ५५

(दोहा)

माया मायिक-ब्रह्म की, उमगी गुण-विस्तार ।
ठोस, पोल के मेल में, बिचरे खेल पसार ॥१॥
देश, काल की कल्पना, ज्ञान,क्रिया-बल पाय ।
जागी जगदम्बा-अजा, नाम, रूप, अपनाय ॥२॥
इन्द्र, इन्द्रियों, से हुआ, तन का मन का मेल ।
भूत बने दो भांति के, हिल मिल खेलें खेल ॥३॥
साधन पाया जीव ने, मन द्रुत-गामी दूत ।
सारहीन-संसार है, उस का ही अनुभूत ॥४॥
भर जाते हैं स्वप्न में, जाग्रत के सब ढंग ।
पाय गाढ़-निद्रा रहै, चेतन एक-असंग ॥५॥

स्वाभाविक-योग ५६

(दोहा)

तू सब का स्वामी बना, सेवक हैं हम लोग ।
नाथ! न छूटेगा कभी, यह स्वाभाविक-योग ॥ १ ॥

हिरण्यगर्भ ५७

(भजन)

सुख दाता तू प्रभु मेरा है ॥टेक॥
तेरी परम-शुद्ध-सत्ता में, सब का विशद-बसेरा है ।
सुख दाता तू प्रभु मेरा है ॥

केवल तेरे एक-देश ने, घटक प्रकृति का घेरा है ॥
सुख दाता तू प्रभु मेरा है ॥
तू सर्वस्व-सकल-जीवों का, किस पर प्यार न तेरा है ।
सुख दाता तू प्रभु मेरा है ॥
दीन बन्धु तेरी प्रभुता का, जड़-मति-शंकर चेरा है ॥
सुख दाता तू प्रभु मेरा है ॥१॥

शिव-सत्तात्मक-विश्व विकाश ५८

(दोहा)

तेरी शुभ सत्ता बिना, हे प्रभु-मंगल-मूल ।
पत्ता भी हिलता नहीं, खिलता कहीं न फूल ॥ १ ॥

सत्य-विश्वास ५९

(भजन)

जिस में तेरा नहीं विकास,
वैसा विकसा फूल नहीं है ॥टेक॥
मैंने देख लिया सब ठौर, तुझ सा मिला न कोई और,
पाया तू सब का सिर मौर, प्यारे इस में भूल नहीं है ।
जि० ते० न० वि० वै० फूल नहीं है ॥
तेरे किंकर करुणा-कन्द, पाते हैं अविरल-आनन्द,
तुझ से भिन्न सच्चिदानन्द, कोई मंगल-मूल नहीं है ॥
जि० ते० न० वि० वै० फूल नहीं है ॥
प्रेमी-भक्त प्रसाद विसार, मांगें मुक्ति पुकार पुकार,
सब का होगा सर्व-सुधार, जो पै तू प्रतिकूल नहीं है ।
जि० ते० न० वि० वै० वि० फूल नहीं है ॥

जिन को मिला बोध विश्राम, जीवन्—मुक्त बने निष्काम,
उन को है शंकर श्री-धाम, तेरा न्याय-त्रिशूल नहीं है ॥
जि० ते० न० बि० वै० फूल नहीं है ॥ १ ॥

व्यापक-व्याप्य-स्वामि-सेवक ६०

(दोहा)

प्यारे तू सब में बसे, तुझ में सब का बास ।
ईश हमारा है तुही, हम सब तेरे दास ॥ १ ॥

विनय ६१

(शुद्धगात्मक—राजगीत)

विधाता / तू हमारा है, तुही विज्ञान दाता है ।
बिना तेरी दया कोई, नहीं आनन्द पाता है ॥
तितिक्षा की कसोटी से, जिसे तू जाँच लेता है ।
उसी विद्याधिकारी को, अविद्या से छुड़ाता है ॥
सताता जो न औरों को, न धोखा आप खाता है ।
वही सद्भक्त है तेरा, सदाचारी कहाता है ॥
सदा जो न्याय का प्यारी, पूजा को दान देता है ।
महाराजा ! उसी को तू, बड़ा—राजा बनाता है ॥
तजे जो धर्म को, धारा,—कुकर्मों की बहाता है ।
न ऐसे नीच-पापी को, कभी ऊंचा चढ़ाता है ॥
स्वयंभू—शंकरानन्दी, तुझे जो जान लेता है ।
वही कैवल्य—सत्ता की, महत्ता में समाता है ॥ १ ॥

अविद्या से हानि ६२

(दोहा)

जो मुझ से न्यारा नहीं, नित्य निरन्तर साथ।
हा? वह विद्या के बिना, अबलों लगा न हाथ॥ १॥

जिज्ञासु की जिज्ञासा ६३

(गीत)

प्रभु रहता है पास,
हा? पर हाथ न आवे॥ टेक॥

प्राणों से भी अति प्यारा, होता है कभी न न्यारा,
मुझ में करे निवास, भीतर बाहर पावे।
प्र० र० पा० हा० हा० न आवे॥

स्वामी स्वाभाविक-सङ्गी, अङ्गों में टिका अनङ्गी,
अस्थिर—भोग—विलास, रोचक—रचे रिझावे।
प्र० र० पा० हा० हा० न आवे॥

जो दोष देख लेता है, तो उग्र—दण्ड देता है,
उपजावे भय—त्रास, तांस तांस तरसावे।
प्र० र० पा० हा० हा० न आवे॥

मेरे उद्योग न रोके, कर्मों को सदा बिलोके,
मन में करे विकास, शंकर खेल खिलावे॥
प्र० र० पा० हा० हा० न आवे॥ १॥

युगल-विलास ६४

(षट्पदी-छन्द)

मन के हर्ष, विषाद, करें मोटा, कृश तन को।
तन के रोग, विकाश, दुःख सुख देते मन को॥
ज्ञान, क्रिया उपजाय, फुरें चेतनता, जड़ता।
इन का अन्तर भेद, निराला सूक्ष्म न पड़ता॥
अद्वैत सर्व-संघात के, पुरुष प्रकृति दो नाम हैं।
कूटस्थ शंकरानन्द में, सब मायिक परिणाम हैं॥

मतवादी ब्रह्म को नहीं पाते ६५

(दोहा)

मत वालों को ब्रह्म का, मिलना है दुशवार।
क्या समझावेंगे उन्हें, शंकर के अशआर॥ १॥

जलाले गजदी ६६

(ग़ज़ल)

हर शाख़ से अयां है, हर सू जलाल तेरा।
माशूक़े बुलबुलां है, ऐ गुल जमाल तेरा॥
नाज़िर न देखता है, इन्साफ़ की नज़र से।
मन्ज़र दिखा रहे हैं, कामिल कमाल तेरा॥
वाइज़ बजा रहा है, तसलीस की सितारी।
माहिर मुसल्लसा है, दिल बे मिसाल तेरा॥
मखलूक मानता है, मखलूक में खुदा को।

मुश्ताके मारिफ़त है, ख़ालिस ख़याल तेरा ॥
अल्लाह को अलहदा, साबित करें जहां से ।
दल्लाल हल न होगा, क्या! यह सुआल तेरा ॥
बे ख़ौफ़ कर रहा है, गुमराह जाहिलों को ।
* शैतान इस बदी से, जल जाय जाल तेरा ॥
ग़ारत नहीं करेगा, उस को जहाने-फ़ानी ।
शंकर नसीब होगा, जिस को विसाल तेरा ॥१॥

प्रेमोपदेश ६७

(दोहा)

खोल खिलोने खोखले, खेल पसार न खेल ।
प्रेमामृत पीले सखा, शंकर से कर मेल ॥१॥

सच्ची-सूचना ६८

(सुन्दरात्मक-राजगीत)

वह पास ही खड़ा है, पर दूर मानता है ।
किस भूल में पड़ा है, कुछ भी न जानता है ॥
हठ-वाद से हठीले, हरि का न मेल होगा ।
छल की कहानियों को, बस क्यों बखानता है ॥
सुनते कुराग तेरे, अब कान वे नहीं हैं ।
फिर तान बेतुकी को, किस हेतु तानता है ॥

* शैतान = मार - यह वह मनोविकार है जो सचाई से हटा कर मिथ्या की ओर खींचता है, महात्मा-बुद्ध-देव इसी को जीत कर "मारजित्" बने थे -

जगदीश को भुलाया, जड़ का बना पुजारी ।
समझा पिसा न पाया, पर धूलि छानता है ॥
लड़ती, लड़ा रही है, अविवेकता–मतों की ।
पशुता प्रमाद ही से, उस की समानता है ॥
छलिया छुपा रहा है, अपनी अजानकारी ।
इस दम्भ की प्रथा में, भ्रम की प्रधानता है ॥
जिस वेद का सदा से, उपदेश हो रहा है ।
उस के विचारने का, प्रण क्यों न ठानता है ॥
कवि शंकरादि ने भी, जिस का न अन्त पाया ।
उस ब्रह्म से निराली, कुछ भी न मानता है ॥१॥

प्रकृति, परमात्मा, जीवात्मा, ६९

(दोहा)

एक महत्ता में मिला, तुझ को मुझ को बास ।
मेरी भांति करे नहीं, पर तू भोग—विलास ॥१॥

उपासना–पञ्चक ७०

(भुजङ्गप्रयातात्मक-मिलिन्दपाद)

अजन्मा न आरम्भ तेरा हुआ है । किसी से नहीं जन्म मेरा हुआ है ॥
रहैगा सदा अन्त तेरा न होगा । किसी काल में नाश मेरा न होगा ॥
खिलाड़ी खुला खेल तेरा रहैगा ।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहैगा ॥ १ ॥
अजा को अकेली न तू छोड़ता है । मुझे भी जगज्जाल में जोड़ता है ॥
न तू भोग भोगे बना-विश्व-योगी । किया कर्म-योगी मुझे भोग भोगी ॥

निराला न तेरा बसेरा रहैगा ।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहैगा ॥ ३ ॥

निराकार! आकार तेरा नहीं है । किसी भांति का मान मेरा नहीं है ॥
सखा! सर्व-संघात से तू बड़ा है । मुझे तुच्छता में समाना पड़ा है ॥
उजाला रहैगा अंधेरा रहैगा ।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहैगा ॥ ३ ॥

अनेकत्व होगा न एकत्व तेरा । न एकत्व होगा अनेकत्व मेरा ॥
न त्यागे तुझे शक्ति-सर्वज्ञता की । लगी है मुझे व्याधि-अल्पज्ञता की ॥
दुई का घटा टोप घेरा रहैगा ।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहैगा ॥ ४ ॥

तुझे बन्ध-बाधा सताती नहीं है । मुझे सर्वदा—मुक्ति पाती नहीं है ॥
प्रभो! शंकरानन्द आनन्द दाता । मुझे क्यों नहीं आपदा से छुड़ाता ॥
दया-दान का दीन चेरा रहैगा
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहैगा ॥ ५ ॥

नैसर्गिक—नीराजन ७१

(दोहा)

भानु, चन्द्र, तारे, शिखी, चपला, उल्का, पात । *
शंकर तेरी आरती, करते हैं दिन रात ॥ १ ॥

आरती ७२

(मानसमरालछन्द)

जय शंकर स्वामी,
जय श्रीशंकर स्वामी ।
अविचल अन्तर्यामी, एक अपरिणामी ॥

* पात = ध्रुव ज्योति — पेरोसाइट पालिस, चमकदार ।

जय शंकर स्वामी ॥

मङ्गल-मूल महत्ता, अतुलित श्री-सत्ता ।
सत्य--सनातन--सत्ता, अजरामर—अत्ता ॥
जय शंकर स्वामी ॥

व्यापक, विश्व-बिहारी, अव्यय, अविकारी ।
मुक्त, महाबल धारी, जन-संकट-हारी ॥
जय शंकर स्वामी ॥

लोचन हीन निहारे, मुख बिन उच्चारे ।
बिन मस्तिष्क विचारे, निर्गुण गुण धारे ॥
जय शंकर स्वामी ॥

रच रच न्यारे न्यारे, भुवन-भानु धारे ।
तैजस-पिण्ड पसारे, चमकें शशि, तारे ॥
जय शंकर स्वामी ॥

जल की तांत उड़ावे, बादल बरसावे ।
अन्नादिक उपजावे, जगदुन्नति पावे ॥
जय शंकर स्वामी ॥

प्रकृति जीव को जोड़े, फिर उलटे मोड़े ।
आप मिलाप न छोड़े, नेक न त्रिक तोड़े ॥
जय शंकर स्वामी ॥

अखिलाधार-विधाता, सुख जीवन दाता ।
मित्र, बन्धु, गुरु, त्राता, परम-पिता, माता ॥
जय शंकर स्वामी ॥

विरचे-भोग अभोगी, सब के उपयोगी ।
कर्म-विपाक वियोगी, अनघ, अनुद्योगी ॥
जय शंकर स्वामी ॥

कपट--जाल से छूटें, छल के गढ़ टूटें ।
लगठ, लबार न लूटें, भ्रम के मठ फूटें ॥
जय शंकर स्वामी ॥
ललना जन्म न खोवें, कुल--विदुषी होवें ।
हा ? कुलटा न बिगोवें, रांड न दुख रोवें ॥
जय शंकर स्वामी ॥
बालक ऊत न ऊलें, वीर न बल भूलें ।
वंश--कल्प--तरु--फूलें, जीवन-फल झूलें ॥
जय शंकर स्वामी ॥ १ ॥
सुख--भोगें हम सारे, सब सब के प्यारे ।
जियें प्रजेश हमारे, कुल--पालन हारे ॥
जय शंकर स्वामी ॥
बैर, विरोध बिसारें, वैदिक—व्रत धारें ।
धर्म सुकर्म प्रचारें, पर--हित बिस्तारें ।
जय शंकर स्वामी ॥
सामाजिक-बल पावें, यश को अपनावें ।
सभ्य, सुबोध कहावें, प्रभु के गुण गावें ॥
जय शंकर स्वामी ॥

दृढप्रतिज्ञ-७३

(दोहा)

मार सहै अन्धेर की, अटकें कष्ट अनेक ।
धर्म-वीर की अन्तलों, पर न टलेगी टेक ॥ १ ॥

धर्मजिज्ञासा ७४

(गीत)

हे जगदीश देव! मन मेरा,
सत्य सनातन-धर्म न छोड़े ॥ टेक ॥
सुख में तुझ को भूल न जावे, नेक न संकट में घबरावे,
धीर कहाय अधीर न होवे, तमक न तार क्षमा का तोड़े।
हे ज० दे० म० स० स० ध० नछोड़े ॥
त्याग जीव के जीवन-पथ को, टेढ़ा हांक न दे तन-रथ को,
अति चञ्चल इन्द्रिय घोड़ों की, भ्रम से उलटी बाग न मोड़े ॥
हे ज० दे० म० स० स० ध० न छोड़े ॥
होकर शुद्ध महा-व्रत धारे, मलिन किसीका माल न मारे,
धार-घमण्ड क्रोध-पाहन से, हा ! न प्रेम-रस का घट फोड़े।
हे ज० दे० म० स० स० ध० न छोड़े ॥
ऊँचे बिमल-विचार चढ़ावे, तप से प्रातिभ-ज्ञान बढ़ावे,
हठ तज मान करे विद्या का, शंकर श्रुति का सार निचोड़े ॥
हे ज० दे० म० स० स० ध० न छोड़े ॥ १ ॥

पवित्रता ७५

(दोहा)

तन, मन, वाणी, आत्मा, बुद्धि, चरित्र, पवित्र ।
जो करलेता है वही, परम-मित्र का मित्र ॥ १ ॥

महा-मनोरथ ७६

(भजन)

हित-कारी तुझ सा नाथ,!
न अपना और कहीं कोई ॥ टेक ॥

शुद्ध किया पानी से तन को, सत्यामृत से मैले मन को,
बुद्धि-मलीन ज्ञान-गङ्गा में, बार बार धोई ।
हि० तु० ना० न० औ० क० कोई ॥
ज्वलित-ज्योति विद्या की जागी, रही न भूल अविद्या भागी,
कर्म सुधार मोह की माया, खोज खोज खोई ॥
हि० तु० ना० न० औ० क० कोई ॥
मार तपोबल के अङ्गारे, पातक-पुञ्ज पजारे सारे,
उमगा योग आत्मा अपना, भाव भूल मोई ।
हि० तु० ना० न० औ० क० कोई ॥
शंकर पाय सहारा तेरा, होगा सिद्ध मनोरथ मेरा,
दीन-दयालु इसी से मैंने, प्रेम-बेलि बोई ॥
हि० तु० ना० न० औ० क० कोई ॥१॥

प्रार्थना ७७

(दोहा)

तारक तेरा नाम है, जो शंकर भगवान ।
तो हम को भी तारदे, छोड़ न अपनी बान ॥१॥

कृपाभिलाषी ७८

(गीत)

ऐसी अमित कृपा कर प्यारे ॥टेक॥
मेघ महा-भ्रम के उड़जावें, तर्क-पवन के मारे ।
दिव्य-ज्ञान-दिनकर के आगे, खिलें न दुर्मत-तारे ॥
ऐसी अमित कृपा कर प्यारे ॥

वैदिक-सिद्ध सुधारें हम को, छूटें अवगुण सारे।
न्याय, नीति, बल से अपनावें, प्रभु सम्राट् हमारे ॥
ऐसी अमित कृपा कर प्यारे ॥
रहैं न सब देशी परदेशी, सुख-समाज से न्यारे।
डूब मरें संकट-सागर में, पतित प्रेम-हत्यारे।
ऐसी अमित कृपा कर प्यारे ॥
अबतो सुन पुकार पुत्रों की, हे पितु पालन हारे।
शंकर क्या हम से बहुतेरे, अधम नहीं उद्धारे ॥
ऐसी अमित कृपा कर प्यारे ॥१॥

कामादिदोष ७९

(दोहा)

शोणित पीते हैं सदा, अटके पांच पिशाच।
पांचों में मुखिया बना, प्रबल पञ्च-नाराच ॥१॥

पांचपिशाच ८०

(गीत)

पांच पिशाच रुधिर पीते हैं ॥टेक॥
काम,क्रोध,मद,लोभ,मोह से, हा ? किस के तन,मन रीते हैं।
पांच पिशाच रुधिर पीते हैं ॥
पूरे रिपु चेतन-कुरङ्ग के, हरि, वृक, भालु, बाघ, चीते हैं ॥
पांच पिशाच रुधिर पीते हैं ॥
छुटें न इन से पिण्ड हमारे, अगणित जन्म वृथा बीते हैं।
पांच पिशाच रुधिर पीते हैं ॥

शंकर वीर-बलिष्ठ वही है, जिस ने ये प्रति-भट जीते हैं ॥
पांच पिशाच रुधिर पीते हैं ॥ १ ॥

पापीकी पुकार ८१

(दोहा)

घेर रहे छोड़ें नहीं, अटके पाप--कठोर ।
दीनानाथ निहार तू, मुझ व्याकुल की ओर ॥१॥

व्याकुल-विलाप ८२

(गीत)

हे प्रभु मेरी ओर निहार ॥ टेक ॥
एक अविद्या का अटका है, पंचरङ्गी परिवार ।
मेल मिलाय *एषणा तीनों, करती हैं कुविचार ।
हे प्रभु मेरी ओर निहार ॥
काट रहे कामादि कुचाली, धार कुकर्म-कुठार ।
जीवन-वृक्ष खसाया, सूखा, पौरुष-पात-पसार ॥
हे प्रभु मेरी ओर निहार ॥
घेर रहे बैरी—विषयों के, बन्धन रूप विकार ।
लाद दिये सब ने पापों के, सिर पर भारी भार ।
हे प्रभु मेरी ओर निहार ॥
जो तू करता है पतितों का, अपनाकर उद्धार ।
तो शंकर मुझ पापी को भी, भव-सागर से तार ॥
हे प्रभु मेरी ओर निहार ॥ १ ॥

* एषणातीनों = पुत्रैषणा १, वित्तैषणा २, लोकैषणा ३

बेजोड़ पातकी ८३

(दोहा)

लोगो मन-मानी कहो, कुछ न करो संकोच।
और न मेरे जोड़ का, पतित-पातकी-पोच ॥१॥

अपनी अधमता ८४

(गीत)

मुझसा कौन अबोध अधम है ॥ टेक ॥

समता मिटी सत्त्व, रज, तम की, गौणिक-विकृति विषम है।
सुखद-विवेक-प्रकाश कहाँ है, नरक-रूप भ्रम-तम है ॥
मुझ सा कौन अबोध अधम है॥

मन में विषय-विकार भरे हैं, तन में अकड़ न कम है।
रहा न प्रेम-विलास वचन में, तनक न नित-संयम है ॥
मुझ सा कौन अबोध अधम है॥

विकट-वितण्डा-वाद निगम है, कपट-जटिल-आगम है।
मंगल-मूल-मनोरथ अपना, अनुपकार-अनुपम है ॥
मुझ सा कौन अबोध अधम है।

अब कुछ धर्म-भाव उपजा है, यह अवसर उत्तम है।
पर करुणा-सागर-शंकर का, न्याय न निपट नरम है ॥
मुझ सा कौन अबोध अधम है॥ १ ॥

उद्धार को निहोड़ा ८५

(दोहा)

डूबे संसृति-सिन्धु में, देह-पोत बहु बार।
शंकर! बेड़ा दीन का, अब तो करदे पार ॥ १ ॥

हताशकी हा! हा! ८६

(गीत)

डगमग डोले दीनानाथ, !
नैया भव-सागर में मेरी ॥ टेक ॥

मैं ने भर भर जीवन-भार, छोड़े तन-बोहित बहुबार,
पहुंचा एक नहीं उस पार, यह भी काल-चक्र ने घेरी ।
ड० डो० दी० नै० भ० मेरी ॥

मुड़का मेरु-दण्ड पतवार, कर,पग,पाते चलें न चार,
सकुचा मन माझी हिय हार, पूरी दुर्गति रात अंधेरी ॥
ड० डो० दी० नै० भ० मेरी ॥

ऊलें अघ, झष,नक्र,भुजङ्ग, झटकें पटकें ताप-तरङ्ग,
तरती कर्म-पवन के सङ्ग, भागे भरती है चकफेरी ।
ड० डो० दी० नै० भ० मेरी ॥

ठोकर मरणाचल की खाय, फट कर डूब जायगी हाय,
शंकर अबतो पार लगाय, तेरी मार सही बहुतेरी ॥
ड० डो० दी० नै० भ० मेरी ॥ १ ॥

उपसंहार ८७

(दोहा)

भक्ति-भूमिका पै बना, मन्दिर दृढ़-विश्वास ।
राग-रत्न का होरहा, मङ्गलकर उद्भास ॥१॥

* भद्रोल्लास *

(यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति)

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ऋ० १।२।७।२० ॥

(ब्रह्मनाद)

समाधिनिर्धूत मलस्य चेतसो, निवेशि तस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्,
नशक्यतेवर्णयितुं गिरा तदा, स्वयं तदन्तः करणेन गृह्यते ॥

सत्यका महत्व १

(महालक्ष्मी-वृत्त)

सत्य संसार का सार है । सत्य का शुद्ध व्यापार है ।
सत्य सद्धर्म का धाम है । सत्य सर्वज्ञ का नाम है ॥ १ ॥

गुरु-गुण-गान २

(रुचिरा-छन्द)

जिस अखिलेश अकाय एक ने, खेल अनेक पसारे हैं ।
जिस असीम चेतन के वश में, जीव चराचर सारे हैं ॥
जिस गुण हीन ज्ञान-सागर ने, सब गुण धारी धारे हैं ।
उस के परम-भक्त बुध-योगी, श्रीगुरु देव हमारे हैं ॥ १ ॥

प्रतिभाकीप्रतिष्ठा ३

(दोहा)

जिस के ज्ञानागार में, प्रतिभा करे विलास ।
बीज विश्व-विज्ञान का, समझो उस के पास ॥ १॥

सद्गुरु-गौरव ४

(गीत)

जिस में सत्य सबोध रहैगा,
कौन उसे सद्गुरु न कहैगा ॥ टेक ॥

जो विचार विचरेगा मन में, अर्थ बसेगा वही बचन में,
भेद न होगा कर्म, कथन में, तीन भांति रस एक बहैगा ।
जि० स० स० र० कौ० उ० स० न कहैगा ॥

सद्गुण-गण-गौरव तोलेगा, पोल कपट, छल की खोलेगा,
जय प्रमाण-प्रण की बोलेगा, मार मार-भट की न सहैगा ॥
जि० स० स० र० कौ० उ० स० न कहैगा ॥

मोह-महासुर से न डरेगा, कुटिलों में ऋजु-भाव भरेगा,
उन्नति के उपदेश करेगा, गैल अधोगति की न गहैगा ।
जि० स० स० र० कौ० उ० स० न कहैगा ॥

धर्म सुधार अधर्म तजेगा, योग-सिद्ध-शुभ-साज सजेगा,
शंकर को धर ध्यान भजेगा, दुःख-हुताशन में न दहैगा ॥
जि० स० स० र० कौ० उ० स० न कहैगा ॥ १ ॥

महापुरुषोंसेसुधार ५

(दोहा)

होने लगता है जहां, परम-धर्म का ह्रास ।
योगी करते हैं वहां, दूर अधर्मज-त्रास ॥ १ ॥

जीवन्मुक्तों के नाम ६

(गीत)

सुनो रे साधो,

मङ्गल-मण्डित नाम ॥ टेक ॥

अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा, प्रकटे पूरण काम ।
ब्रह्मा, मनु, वसिष्ठ ने पाया, उच्च विशद विश्राम ॥
सु० सा० मं० मं० नाम ॥

धर्माधार अखण्ड प्रतापी, राम लोक अभिराम ।
योगि राज अद्वैत विवेकी, यादवेन्द्र घनश्याम ॥
सु० सा० मं० मं० नाम ॥

विद्या वारिधि व्यास देव ने, समझे मृत्युञ्जु साम ।
सिद्ध प्रसिद्ध महा विज्ञानी, शुद्ध-बुद्ध सुख धाम ॥
सु० सा० मं० मं० नाम ॥

शंकरादि नामी पुरुषों के, गाय गाय गुण ग्राम ।
करिये दयानन्द स्वामी को, श्रद्धा सहित प्रणाम ॥
सु० सा० मं० मं० नाम ॥ १ ॥

मोक्ष पर सदुक्ति ७

(अभिनववृत्त)

कौन मानेगा नहीं, इस उक्ति को ।
गाढ़ निद्रा सी कहें, यदि मुक्ति को ॥
खोखली है भावना, उस अन्ध की ।
मानता है जो नहीं, दृढ़ युक्ति को ॥ १ ॥

ज्ञानान्मुक्ति ८

(दोहा)

नाना कारण दुःख के, सुख के हेतु अनेक ।
साधन है कैवल्य का, केवल एक विवेक ॥ १ ॥

पञ्चरत्न पाठ ६

(सगणात्मक-सवैया)

बिन बास बसे बसुधा भर में, द्रवता रस हीन बहै बन में ।
चमकें बिन रूप हुताशन में, बिचरे बिन छूत प्रभञ्जन में ।
गरजे बिन शब्द ख मण्डल में, बिन भेद रहै जड़ चेतन में ।
कवि शंकर ब्रह्म बिलास करे, इस भांति विवेक भरे मन में ॥१॥

शुभ सत्य—सनातन धर्म वही, जिस में मत पन्थ अनेक नहीं ।
बल-वर्द्धक वेद वही जिस में, उपदेश अनर्थक एक नहीं ॥
अविकल्प समाधि वही जिस में, सुख संकट का व्यतिरेक नहीं ।
कवि शंकर बुद्ध विशुद्ध वही, जिस के मन में अविवेक नहीं ॥२॥

मिल वैदिक मंत्र पयोद घने, सुविचार—महाचल पै बरसें ।
विधि और निषेध प्रवाह बहैं, उपदेश—तड़ाग भरे दरसें ॥
व्रत-साधन—वृक्ष बढ़ें विकसें, लटकें फल चार पकें सरसें ।
कवि शंकर मूढ़ विवेक विना, इस रूपक के रस को तरसें ॥३॥

जड़ चेतन भूत अधीन रहैं, गुण साधन दान करें जिस को ।
सब को अपनाय सुधार करे, शुभचिन्तक रोक रहै रिस को ॥
बन जीवन-मुक्त सुखी विचरें, तज मौखिक दन्त घिसाघिस को ।
कवि शंकर ब्रह्म विवेक विना, इतने अधिकार मिलें किस को ॥४॥

गिन खेट भकूट ख मण्डल में, फल ज्योतिष के पहँचान लिये ।
कर शिल्प रसायन की रचना, रच भौतिक-तत्व-विधान लिये ॥
समझे गुण दोष चराचर के, नव-द्रव्य यथाक्रम मान लिये ।
कवि शंकर ज्ञान विशारद ने, सब के सब लक्षण जान लिये ॥५॥

परिवार–विलास विसार दिये, क्षण भंगुर भोग भरे घर में ।
समता उपजी ममता न रही, अपवित्र अनित्य कलेवर में ॥
अभिमान मरा भ्रम दोष मिटे, अनुराग रहा न चराचर में ।
कवि शंकर पाय विवेक टिके, इस भांति महा मुनि शंकर में ॥६॥

भ्रम-कुम्भ असार असत्य भरे, गिर सत्य शिला पर फूट गये ।
हठवाद, प्रमाद, न पास रहे, दृढ़ मायिक बन्धन टूट गये ॥
समझे अज एक सदाशिव को, कुविचार, कुलक्षण छूट गये ।
कवि शंकर सिद्ध,प्रसिद्ध,सुधी, सुख-जीवन का रस लूट गये ॥७॥

सुरपादप निर्भय–न्याय बने, घनश्याम घटा बनजाय दया ।
रुचि-भू पर प्रीति-सुधा बरसे, बन ब्यार बहै करनी अभया ॥
उपकार मनोहर फूल खिलें, सब को दरसे नय दृश्य नया ।
कवि शंकर पुण्य फले उसका, जिस में गुरु-ज्ञान समाय गया ॥८॥

कब कौन अगाध-पयोनिधि के, उस पार गया जल-यान बिना ।
मिल प्राण,अपान, उदान,रहें, तन में न समान, सव्यान बिना ॥
कहिये ध्रुव-ध्येय मिला किस को, अविकल्प अचञ्चल ध्यान बिना ।
कवि शंकर मुक्ति न हाथ लगी, भ्रम-नाशक निर्मल ज्ञान बिना ॥९॥

पढ़ पाठ प्रचण्ड प्रमाद भरे, कपटी जन जन्म गमाय गये ।
रण रोप भयानक आपस में, भट केवल पाप कमाय गये ॥
धन,धाम विसार धरातल में, धनवान असंख्य समाय गये ।
कवि शंकर सिद्ध मनोरथ की, जड़ शुद्ध सुबोध जमाय गये ॥१०॥

उपदेश अनेक सुने मन को, रुचि के अनुसार सुधार चुके ।
धर ध्यान यथाविधि मंत्र जपे, पढ़ वेद पुराण विचार चुके ॥

गुरु-गौरव धार महन्त बने, धन धाम कुटुम्ब बिसार चुके ।
कवि शंकर ज्ञान बिना न तरे, सब ओर फिरे झखमार चुके ॥११॥

निगमागम, तंत्र, पुराण पढ़े, प्रतिवाद-प्रगल्भ कहाय खरे ।
रच दम्भ प्रपञ्च पसार घने, बन वञ्चक वेष अनेक धरे ॥
विचरे कर पान प्रमाद-सुरा, अभिमान-हलाहल खाय मरे ।
कवि शंकर मोह-महोदधि को, बकराज विवेक बिना न तरे ॥१२॥

गुरु-गौरव हीन कुचाल चलें, मत भेद पसार प्रपञ्च रचें ।
दिन रात मनोमुख मूढ़ लड़ें, चहुँ ओर घने घमसान मचें ॥
व्रत-बन्धन के मिस पाप करें, हठ छोड़ न हाय लबार लचें ।
कवि शंकर मोह-महासुर से, बिरले जन पाय विवेक बचें ॥१३॥

घर बार बिसार विरक्त बने, मुनि वेष बनाय प्रमत्त रहें ।
बकवाद अबोध गृहस्थ छले, शठ शिष्य अनन्य-सुजान कहें ॥
घुस घोर घमण्ड महाबन में, विचरें कुलबोर कुपन्थ गहें ।
कवि शंकर एक विवेक बिना, कपटी उपताप अनेक सहें ॥१४॥

तन सुन्दर रोग-विहीन रहे, मन त्याग उमङ्ग उदास न हो ।
मुख धर्म-प्रसङ्ग प्रकाश करे, नर-मण्डल में उपहास न हो ॥
धन की महिमा भरपूर मिले, प्रतिकूल मनोज-विलास नहो ।
कवि शंकर ये उपभोग वृथा, पटुता, प्रतिभा यदि पास नहो ॥१५॥

दिन रात समोद विलास करें, रस रङ्ग भरे सुख-साज बने ।
शिर धार किरीट कृपाण गहें, अवनी भर के अधिराज बने ॥
अनुकूल अखण्ड प्रताप रहै, अविरुद्ध अनेक समाज बने ।
कवि शंकर वैभव ज्ञान बिना, भवसागर के न जहाज बने ॥१६॥

जिस पै करतूत चली न किसी, नर,किन्नर,नाग,सुरासुर की ।
बल,साहस के फल से न भिड़ी, हठ भीरु, भगोड़ भयातुर की ॥
गति उद्यम के मग में न रुकी, अति उच्च उमङ्ग भरे उरकी ।
कवि शंकर पै बिन ज्ञान डरी, प्रभुता न मिली प्रभुके पुरकी ॥१७॥

अनमेल अनीति-प्रचार करें, अपवित्र-प्रथा पर प्यार करें ।
खल-मण्डल का उपकार करें, बिगड़े न समाज सुधार करें ॥
अपकार अनेक प्रकार करें, व्यभिचार कुकर्म विसार करें ।
कवि शंकर नीच-विचार करें, बिन बोध बुरे व्यवहार करें ॥१८॥

कुलबोर कठोर महा कपटी, कब कोमल-कर्म-कलाप करें ।
पशु पोच प्रचण्ड प्रमाद भरे, भर पेट भयानक पाप करें ॥
मगा रोध लड़ें लघु आपस में, तज बैर न मेल मिलाप करें ।
कवि शंकर मूढ़ विवेक बिना, अपना गल बन्धन आप करें ॥१९॥

बिन पावक देव न पासकते, अभिमंत्रित आहुतियां हवि की ।
रसराज न सुन्दर साज सजे,छिटके मिल जो न छटा छवि की ॥
ग्रह ऋक्ष खिलें नखमण्डल में, यदि प्यार करे न प्रभा रवि की ।
कवि शंकर तो बिन ज्ञान फिरे, पदवी मिलजाय महाकवि की ॥२०॥

ब्रह्मचर्य का महत्व १०

(दोहा)

रहै जन्म से मृत्युलों, ब्रह्मचर्य-व्रत धार ।
समझो ऐसे वीर को, पौरुष पुरुषाकार ॥ १ ॥
बालब्रह्मचारी जहां, उपजें परमोदार ।
शंकर होता है वहां, सबका सर्व-सुधार ॥ २ ॥

बाल ब्रह्मचारी रहे, पाय प्रताप-अखण्ड ।
पाठक ? आगे देखलो, पांच प्रमाण प्रचण्ड ॥ ३ ॥

प्रशस्त-पञ्चक ११
(त्रिविरामात्मक-मिलिन्दपाद)
(पुरुषोत्तम परशुराम)

चूका कहीं न, हाथ गले, काटता रहा ।
पैना कुठार, रक्त बसा, चाटता रहा ॥
भागे भगोड़, भीरु भिड़ा, धीर न कोई ।
मारे महीप, वृन्द बचा, वीर न कोई ॥
सुप्रसिद्ध राम,-जामदग्न्य, का*कुदान है ।
महिमा-अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥ १ ॥

(महावीर-हनुमान)

सुग्रीव का सु,-मित्र बड़े, काम का रहा ।
प्यारा अनन्य,-भक्त सदा, राम का रहा ॥
लङ्का जलाय,काल खलों,को सुझा दिया ।
मारे प्रचण्ड, दुष्ट दिया, भी बुझा दिया ॥
हनुमान बली, वीर-वरों, में प्रधान है ।
महिमा-अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥ २ ॥

(राजर्षि-भीष्मपितामह)

भूला न किसी, भांति कड़ी, टेक टिकाना ।
माना मनोज, का न कहीं, ठीक ठिकाना ॥

* कुदान = भूमिदान – खोटादान – उछलकूद –

जीते असंख्य, शत्रु रहा, दर्प दिखाता ।
शय्या शरों की, पाय मरा, धर्म सिखाता ॥
अब एक भी न, भीष्म बली, सा सुजान है ।
महिमा—अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥ ३ ॥

(महात्माशंकराचार्य)

संसार सार, हीन सड़ा, सा उड़ा दिया ।
अल्पज्ञ जीव, मन्द दशा, से छुड़ा दिया ॥
अद्वैत एक, ब्रह्म सबों, को बता दिया ।
कैवल्य-रूप, सिद्धि-सुधा, का पता दिया ॥
भ्रम-भेद भरा, शङ्करेश, का न ज्ञान है ।
महिमा-अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥ ४ ॥

(स्वामीदयानन्दसरस्वती)

विज्ञान- पाठ, वेद पदों, को पढ़ा गया ।
विद्या-विलास, विज्ञ वरों, का बढ़ा गया ॥
सारे असार, अन्य मतों, को हिला गया ।
आनन्द-सुधा, सार दया, का पिला गया ॥
अब कौन दया, नन्द यती, के समान है ।
महिमा-अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥ ५ ॥

सद्गुरुदीक्षा १२

(दोहा)

विज्ञ वेद-वक्ता मिले, श्री गुरु देव दयालु ।
श्रद्धानन्दी बन गये, सेवक सब श्रद्धालु ॥ १ ॥

सद्गुरु-प्रसाद १३

(गीत)

श्री गुरु दयानन्द से दान,
हमने ब्रह्मानन्द लिया है ॥ टेक ॥

लेकर वेदों का उपदेश, देखा परम-धर्म का देश,
जाना मंगल-मूल महेश, ज्ञानागार पवित्र किया है।
श्री० द० दा० ह० ब्र० लिया है ॥

पाये युक्ति-प्रमाण प्रचण्ड, जिन से जीत लिया पाखण्ड,
मारा देकर दण्ड घमण्ड, हठ का अण्डा फोड़ दिया है ॥
श्री० द० दा० ह० ब्र० लिया है ॥

भ्रम की तारतम्यता तोड़, उलझे जाल मतों के छोड़,
उलटे पन्थों से मुख मोड़, प्रतिभा का पीयूष पिया है।
श्री० द० दा० ह० ब्र० लिया है ॥

मुनि की शिक्षा का बल धार, पूजा प्रेम विरोध बिसार,
शंकर कर दे बेड़ा पार, जीवन दाता योग जिया है ॥
श्री० द० दा० ह० ब्र० लिया है ॥१॥

सद्गुरु-घोषणा १४

(षट्पदी-छन्द)

ब्रह्म विचार प्रचार, ध्यान शंकर का धरना।
जाल, प्रपञ्च, पसार, न पूजा जड़ की करना ॥
भूत, प्रेत, अवतार, और तज श्राद्ध मरों के।
धर्म सुयश, विस्तार, गहो गुण विज्ञ-वरों के ॥
भ्रम, भूलों की संशोधना, शुभ सामयिक सुधार है।
यह विदों की उद्घोषना, सुन-गुरु! गौरव सार है ॥१॥

अनभिज्ञ अनधिकारी १५

(दोहा)

सीखे श्रीगुरु देव से, ज्ञान-कथा अति गूढ़ ।
तोभी महिमा ब्रह्म की, हाय! न समझे मूढ़ ॥१॥

सद्गुरु का सच्छिष्य १६

(गीत)

श्रीगुरु गूढ़ ज्ञान के दानी ॥ टेक ॥
देख सर्व--संघात ब्रह्म की, अटल एकता जानी ।
भेदों से भरपूर अविद्या, भूल भरी पहँचानी ॥
श्रीगुरु गूढ़-ज्ञान के दानी ॥
एक वस्तु में तीन गुणों की, मायिक-महिमा मानी ।
ठोस, पोल की तारतम्यता, मूल--प्रकृति न टानी ॥
श्रीगुरु गूढ़-ज्ञान के दानी ॥
देश, दिशा, आकाश, काल, भू, मारुत, पावक, पानी ।
इन के साथ जीव की जागी, ज्योति मनोरस सानी ॥
श्रीगुरु गूढ़-ज्ञान के दानी ॥
छोटासा उपदेश दिया है, बढ़िया बात बखानी ।
तोभी मूढ़ नहीं समझेंगे, शङ्कर कूट--कहानी ॥
श्रीगुरु गूढ़-ज्ञान के दानी ॥ १ ॥

सद्गुरु के दीक्षित-शिष्य १७

(दोहा)

विज्ञानी गुरु देव से, पूछ लिया भ्रम-रोग ।
आज अविद्या-बन्ध से, मुक्त हुये सब लोग ॥

वैदिक वीरों की प्रतिज्ञा १८

(रूपघनाक्षरी-कवित्त)

पद्धति न छोड़ेंगे प्रतापी धर्म धारियों की,
पापी बक्र-गामियों की गैल न गहैंगे हम ।
सेवक बनेंगे ब्रह्मचारी, साधु, पण्डितों के,
मानी मूढ़-मण्डल के साथी न रहैंगे हम ॥
पावें शुद्ध-सम्पदा तो भोगें सुख-भोग सदा,
आपदा पड़े तो सारे संकट सहैंगे हम ।
जीवन सुधारें एक तेरी भक्ति-भावना से,
दीनानाथ-शंकर-सँगाती से कहैंगे हम ॥ १ ॥

देश का पुनरुद्धार १८

(दोहा)

देगी शंकर की दया, अब आनन्द अपार ।
देखो! भारत का हुआ, उदय दूसरी बार ॥ १ ॥

भारतोदय २०

(गीतिकात्मक-मिलिन्दपाद)

ब्रह्मचारी ब्रह्म-विद्या, का विशद विश्राम था ।
धर्म धारी धीर योगी, सर्व--सद्गुण धाम था ॥
कर्म-वीरों में प्रतापी, पर निरा निष्काम था ।
श्री दयानन्दर्षि स्वामी, सिद्ध जिस का नाम था ॥
बीज विद्या के उसी का, पुण्य-पौरुष बोगया ।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया ॥ १ ॥

सत्यवादी वीर था जो, वाचनिक-संग्राम का ।
साहसी पाया किसी को, भी न जिस के काम का ॥
प्राणदे प्रेमी बना जो, प्रेम के परिणाम का ।
क्या दया आनन्द धारी, धीर था वह नाम का? ॥
धन्य सच्छिक्षा-सुधा से, धर्म का मुख धोगया ।
देख लो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया ॥ २ ॥

साधु-भक्तों में सुयोगी, संयमी बढ़ने लगे ।
सभ्यता की सीढ़ियों पै, सूरमा चढ़ने लगे ॥
वेद-मंत्रों को विवेकी, प्रेम से पढ़ने लगे ।
वञ्चकों की छातियों में, शूल से गढ़ने लगे ॥
भारती जागी अविद्या, का कुलाहल सोगया ।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया ॥ ३ ॥

कामना विज्ञान वादी, मुक्ति की करने लगे ।
ध्यान द्वारा धारणा में, ध्येय को धरने लगे ॥
आलसी, पापी, प्रमादी, पाप से डरने लगे ।
अन्ध-विश्वासी सचाई, भूल में भरने लगे ॥
धूलि मिथ्याकी उड़ादी, दम्भ-दाहक रोगया ।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया ॥ ४ ॥

तर्क-झंझा के झकोले, झाड़ने चलने लगे ।
युक्तियों की आग चेती, जालिया जलने लगे ॥
पुण्य के पोधे फबीले, फूलने फलने लगे ।
हाथ हत्यारे हठीले, मादकी मलने लगे ॥
खेल देख चेतना के, जड़ खिलोना खोगया ।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया ॥ ५ ॥

तामसी थोथे भक्तों की, मोह-माया हट गई ।
ऐंठ की पोली पहाड़ी, खण्डनों से फट गई ॥
छूत छैया की अछूती, नाक लम्बी कट गई ।
लालची, पाखण्डियों की, पेट-पूजा घट गई ॥
भूत भूतों का बखेड़ा, डूब मरने को गया ।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया ॥ ६ ॥

राज-सत्ता की महत्ता, धन्य मङ्गल-मूल है ।
दण्ड भी कांटा नहीं है, न्याय-तरु का फूल है ॥
भावना प्यारी प्रजा की, धर्म के अनुकूल है ।
जो बना बैरी, बिरोधी, हाय उस की भूल है ॥
क्या जिया जो दुष्टता का, भार आकर ढोगया ।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया ॥ ७ ॥

सत्य के साथी बिवेकी, मृत्यु को तरजायँगे ।
ज्ञान-गीता माय भोलों, का भला करजायँगे ॥
अन्ध-अज्ञानी अँधेरे, में पड़े मरजायँगे ।
आप डूबेंगे अविद्या, देश में भरजायँगे ॥
शंकरानन्दी वही है, जाल शिव को जो गया ।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया ॥ ८ ॥

सदुपाय २१

(दोहा)

भूल न दीनानाथ को, कर्म, विचार सुधार ।
यों हो सकता है सखा !, भव-सागर से पार ॥ १ ॥

उद्बोधनाष्टक २२

(सरसी-छन्द)

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह की, पँचरंगी कर दूर ।
एक रंग तन, मन, बाणी में, भर ले तू भरपूर ॥
प्रेम पसार न भूल भलाई, वैर, विरोध बिसार ।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार ॥ १ ॥

देख ! कुदृष्टि न पड़ने पावे, पर-वनिता की ओर ।
विवश किसी को नहीं सुनाना, कोई वचन कठोर ॥
अबला, अबलों को न सताना, पाय बड़ा अधिकार ।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार ॥ २ ॥

आय न उलझें मत वालों के, छल, पाखण्ड, प्रमाद ।
नेक न जीवन-काल बिताना, कर कोरे बकवाद ॥
बांटें मुक्ति ज्ञान बिन उन को, जान अजान लबार ।
भक्ति भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार ॥ ३ ॥

हिंसक, मद्यप, आमिष-भोजी, कपटी, वञ्चक, चोर ।
ज्वारी, पिशुन, चबार, कृतघ्नी, जार, हठी, कुलबोर ॥
असुर, आततायी, नृप-द्रोही, इन सब को धिक्कार ।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार ॥ ४ ॥

जो सब छोड़ सदा फिरते हैं, निर्भय देश, विदेश ।
तर्क-सिद्ध श्रेयस्कर जिन से, मिलते हैं उपदेश ॥
ऐसे अतिथि महापुरुषों का, कर सादर सत्कार ।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार ॥ ५ ॥

माता, पिता, सुकवि, गुरु, राजा, कर सब का सम्मान ।
रुग्ण, अनाथ, पतित, दीनों को, दे जल, भोजन, दान ॥
सुभट, गदारि, शिल्पकारों को, पूज सुयश विस्तार ।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार ॥ ६ ॥

लगन लगाय धर्म-पत्नी से, कुल की बेलि बढ़ाय ।
कर सुधार दुहिता, पुत्रों का, वैदिक-पाठ पढ़ाय ॥
सज्जन, साधु, सुहृद, मित्रों में, बैठ विचार प्रचार ।
भक्ति-भाव से भज शंकरको, धर्म दया उर धार ॥ ७ ॥

पाल कुटुम्ब सदुद्यम-द्वारा, भोग सदा सुख-भोग ।
करना सिद्ध ज्ञान-गौरव से, निश्रेयस-प्रद—योग ॥
जप, तप, यज्ञ, दान, देवेंगे, जीवन के फल चार ।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार ॥ ८ ॥

धर्म से सुधार २३

(दोहा)

जानेगा जगदीश को, जो जन छोड़ कुकर्म ।
क्यों न सुधारेगा उसे, सत्य-सनातन-धर्म ॥ १ ॥

प्रबोध पञ्चक २४

(प्रमाणिकात्मकमिलिन्दपाद)

सुधार धर्म कर्म को । विसार दो अधर्म को ॥
बढ़ाय बेलि प्रीति की । कथा सुनीति रीति की ॥
सुना करो अनेक से ।
मिलो महेश एक से ॥ १ ॥

बनाय ब्रह्मचर्य को। मनाय विज्ञ वर्य को ॥
षडङ्ग वेद को पढ़ो। सुबोध-शैल पै चढ़ो ॥
सुधी बनो विवेक से।
मिलो महेश एक से ॥२॥

रिझाय धर्म-राज को। भजो भले समाज को ॥
मिटाय जाति पाँति के। बिरोध भाँति भाँति के ॥
छुड़ाय छेक छेक से।
मिलो महेश एक से ॥३॥

जगाय ब्रह्म-योग को। भगाय कर्म—भोग को ॥
बसाय ज्ञेय ज्ञान में। धसाय ध्येय ध्यान में ॥
* समाधि सीख भेक से।
मिलो महेश एक से ॥४॥

जनाय जाल—जल्पना। करो न कूट-कल्पना ॥
विचार शंकरादि के। रहस्य हैं ऋगादि के ॥
उन्हें टिकाय टेक से।
मिलो महेश एक से ॥५॥

आत्मज्ञकीतल्लीनता २५

(दोहा)

जाना जिसने आप को, भ्रम के भेद विसार।
मित्र उसी तल्लीन का, है शंकर करतार ॥ १ ॥

* नोट—समाधि सीख भेक से = भेक = मेंडक से समाधि की शिक्षा ली गई है.

सावधान रहो २६

(भुजंग्यात्मकराजगीत)

महादेव को भूल जाना नहीं। किसी और से लौ लगाना नहीं॥
बनो ब्रह्मचारी पढ़ो वेद को। द्विजाभास कोरे कहाना नहीं॥
करो प्यार पूरा सदाचार पै। दुराचार से जी जलाना नहीं॥
निरालस्य विद्या बढ़ाते रहो। अविद्या-नटी को नचाना नहीं॥
रहो खोलते पोल पाखण्ड की। खलों की प्रतिष्ठा बढ़ाना नहीं॥
बड़ाई करो ज्ञान, विज्ञान की। महामोह की मार खाना नहीं॥
अहिंसा न छोड़ो दया दान दो। किसी जीव को भी सताना नहीं॥
सुना के रसीली कथा जाल की। भरी मण्डली को रिझाना नहीं॥
बिना याचना और की वस्तु को। ठगी से न लेना चुराना नहीं॥
छुआ छूत से जाति के मेल को। घृणा के गढ़े में गिराना नहीं॥
न छूना छड़ी राज विद्रोह की। प्रजा की प्रशंसा घटाना नहीं॥
महाशोक सन्ताप के सिन्धु में। गिरा नारियों को डुबाना नहीं॥
चलाना सदुद्योग से जीविका। दिखा लोभ-लीला कमाना नहीं॥
न चूको मिलो शंकरानन्द से। निरे तर्क के गीत गाना नहीं॥ १॥

शुभ सूचना २७

(दोहा)

मत पन्थों में जाल के, देख चुका सब देश।
भोले अबतो मानले, शंकर का उपदेश॥ १॥

सदुपदेश २८

(रुचिरात्मक-राजगीत)

शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म का, भक्ति भाव से ध्यान करो।
कर्म-योग साधन के द्वारा, सिद्ध ज्ञान विज्ञान करो॥

वेद–विरोधी–पन्थ बिसारो, मन्द–मतों से दूर रहो।
करते रहो सत्य की सेवा, गुरु लोगों का मान करो ॥
शुभ–सुदृश्य देखो विद्या के, धूलि अविद्या पर डालो।
अपने गुण, आविष्कारों का, सब देशों को दान करो ॥
चारों ओर सुयश विस्तारो, पुण्य–प्रतिष्ठा को पकड़ो।
राज–भक्ति के साथ प्रजा की, पूजा का अभिमान करो ॥
छोड़ो उन कामों को जिन से, औरों का उपकार नहो।
वैर त्याग, पीयूष प्रेम का, सभ्य–सभा में पान करो ॥
प्राण हरो आलस्यासुर के, रक्षा करो सदुद्यम की।
सेवक बनो धर्म–वीरों के, दुष्टों का अपमान करो ॥
हेमित्रो ! दुर्लभ–जीवन पै, कोई दोष न लगने दो।
अपनालो शंकर–स्वामी को, बैठे मंगल–गान करो ॥१॥

विद्या-विलासी बनो २९

(दोहा)

जीव अविद्या-व्याधि को, कर देगा जब दूर।
शंकर—दाता की दया, तब होगी भरपूर ॥ १ ॥

हितवार्ता ३०

(गीत)

अब चेतो भाई,
चेतना न त्यागो जागो सो चुके ॥ टेक ॥
समता सटकी पटुता पटकी, अटकी कटुता छल-बल की,
भूल भरी जड़ता अपनाली, विद्या के सहारे न्यारे हो चुके।
अ० चे० भा० चे० त्या० जा०सो चुके ॥

अपनी गुरुता लघुता करली, परखी प्रभुता पर घर की,
कायर--कर्म--कलाप तुम्हारे, वीरों की हँसी के मारे रो चुके ॥
अ० चे० भा० चे० त्या० जा० सो चुके ॥
बिगड़ी सुविधा सुख-साधन की, उलटी गति अस्थिर धन की,
सौंप दरिद्र सदुद्यम डूबे, खेलों में कमाना खाना खो चुके ।
अ० चे० भा० चे० त्या० जा० सो चुके ॥
उतरी पगड़ी बढ़िया-पन की, घुड़कें अगुआ अवनति के,
सेवक--शंकर के न कहाये, पन्थों में मतों के काँटे बोचुके ॥
अ० चे० भा० चे० त्या० जा० सोचुके ॥ १ ॥

अबतो चेतजा ३१

(दोहा)

शैशव खोया खेल में, यौवन-काल समेत ।
थोड़ा जीवन शेष है, अबतो चेत अचेत ॥ १ ॥

करभला होगा भला ३२

(गीत)

अब तो चेत भला कर भाई ॥ टेक ॥
बालक-पन में रहा खिलाड़ी, निकल गई तरुणाई ।
बहुत बुढ़ापे के दिन बीते, उपजी पर न भलाई ॥
अबतो चेत भला कर भाई ॥
धर्म, प्रेम, विद्या, बल, धन की, करी न प्रचुर कमाई ।
इन के बिना बटोर न पाई, सुयश बगार बड़ाई ॥
अबतो चेत भला कर भाई ॥

पिछले कर्म बिगाड़ चुका है, अगली विधि न बनाई ।
चलने की सुधि भूल रहा है, सुमति समीप न आई ॥
अबतो चेत भला कर भाई ॥
संकट काट नहीं सकती है, कपट भरी चतुराई ।
ब्रह्म-ज्ञान बिन हाय किसी ने, शंकर सुगति न पाई ॥
अबतो चेत भला कर भाई ॥ १ ॥

आपस का अनैक्य ३३

(दोहा)

जन्मे एक प्रकार से, भोग-बिलास समान ।
मरना भी है एकसा, समझें भेद अजान ॥ १ ॥
एक पिता के पुत्र हैं, धर्म--सनातन एक ।
हा ? मत वालों ने रचे, जाल-कुपन्थ अनेक ॥ २ ॥

नरक-निदर्शन ३४

[गीत]

हम सब एक पिता के पूत ॥ टेक ॥
हा ? विशाल-मानव-मण्डल में, उपजे उद्धत-ऊत ।
मान लिये इन मतवालों ने, भिन्न भिन्न मत-भूत ॥
हम सब एक पिता के पूत ॥
सामाजिक-बल को लग बैठी, छल की छूत अछूत ।
जल कर जाति-पाँति ने तोड़ा, सुख-साधन का सूत ॥
हम सब एक पिता के पूत ॥
प्रभुता पाय दहाड़ रहे हैं, सबल-रुद्र के दूत ।
पिण्ड पड़ी कुटिला-कुनीति की, रोप भरी करतूत ॥
हम सब एक पिता के पूत ॥

भड़क रही तीनों नरकों में, अड़ की आग--अकूत ।
शंकर कौन बुझावे इस को, बिन विवेक--जीमूत ॥
हम सब एक पिता के पूत ॥ १ ॥

प्रेम-पञ्चक ३५

(दोहा)

यद्यपि दोनों में रहै, जड़ता-मूलक मोह ।
तोभी प्रभुता प्रेम की, प्रकटें चुम्बक लोह ॥ १ ॥
यों निर्जीव सजीव का, समझो प्रेम--प्रसङ्ग ।
प्यारे दीपक से मिले, प्राण-बिसार पतङ्ग ॥ २ ॥
तरु, वल्ली, फूलें, फलें, आपस में लिपटाय ।
माने महिमा मेल की, बढ़ें प्रेम-बल पाय ॥ ३ ॥
घेर रहे संसार को, प्रेम, बैर, भर पूर ।
पहले की पूजा करो, पिछले को कर दूर ॥ ४ ॥
बैठ प्रेम की गोद में, हिलमिल खेलो खेल ॥
प्रेम बिना होगा नहीं, प्रभु--शंकर से मेल ॥ ५ ॥

सच्ची-बात ३६

(सुमनात्मक-राजगीत)

मेल को मेला लगा है, मार खाने को नहीं ।
धर्म-रक्षा को टिके हो, जी दुखाने को नहीं ॥
जन्म होता है भलों का, देश के उद्धार को ।
प्रेम की पूजा, भलाई, भूल जाने को नहीं ॥
द्रव्य दाता ने दिया है, दान, भोगों के लिये ।
गाढ़ने को दीन--हीनों, के सताने को नहीं ॥

वीरता धारो प्रमादी, मोह के संहार को।
जाति-विद्रोही खलों में, मान पाने को नहीं॥
लौ लगी है ब्रह्म से तो, छोड़ दो संसार को।
ढोंग अज्ञों के अखाड़ों, में दिखाने को नहीं॥
शंकरानन्दी बनो तो, वेद-विद्या को पढ़ो।
पण्डिताई के कटीले, गीत गाने को नहीं॥ १॥

चरित सुधारो ३७

(दोहा)

जो कुछ भूलों से हुआ, उस का सोच बिसार।
नाता तोड़ बिगाड़ से, चेत ? चरित्र सुधार॥१॥

आत्म-शोधन ३८

(गीत)

बिगड़ा-जीवन, जन्म सुधार॥ टेक॥
खेल न खेल मूढ़-मण्डल में, कर विवेक पर प्यार।
छल-बल छोड़ मोह-माया के, हित कर-सत्य पसार॥
बिगड़ा-जीवन, जन्म सुधार॥
बन्धन काट कड़े विषयों के, वश कर मन को मार।
अस्थिर-भोग भोग मत भूले, सब को समझ असार॥
बिगड़ा-जीवन, जन्म सुधार॥
छाक न छल से छीन पराई, बाँट सुकृत--उपहार।
मत सोचे अपकार किसी का, करले पर--उपकार॥
बिगड़ा जीवन जन्म सुधार॥

पल भर भी भूले मत भाई, हरि को भज हर बार ।
चेत ? चार फल देगा तुझ को, शंकर--परम--उदार ॥
बिगड़ा जीवन जन्म सुधार ॥ १ ॥

सुधारकीसूचना ३९

(दोहा)

मिलना है जो मित्र से, तो कुचरित्र सुधार ।
प्रेमामृत पीले सखा, जाति-विरोध बिसार ॥१॥

निषिद्ध—जीवन ४०

(षट्पदी—छन्द)

बालक, दीन, अनाथ, हाय ? अपनाय न पाले ।
दलित-देश के साथ, प्रेम कर कष्ट न टाले ॥
संकट किया न दूर, अभागे ? विधवा-दल से ।
मान-दान भर पूर, न पाया मुनि-मण्डल से ॥
गरिमा न गही गोपाल की, ज्ञान न गुणियों से लिया ।
शठ-शंकर ? लोभी लालची, पाय प्रचुर पूँजी जिया ॥१॥

खोटी चाल छोड़दे ४१

(दोहा)

खोटा-जन्म सुधार ले, जीवन यों न बिगाड़ ।
क्यों रखता है पीठ पै, कपटी ? पाप--पहाड़ ॥१॥

अबतो भला बनजा ४२

(गीत)

अब तो जीवन, जन्म सुधार,
क्यों विष उगले भूल भलाई ॥टेक॥

उत्तम-करनी से मुख मोड़, किलके कुल की पद्धति छोड़,
बिचरे मृदुता का घर फोड़, मन को उलटी चाल चलाई।
अ० जी० ज० सु० क्यों० उ० भू० भलाई ॥
पर-हित के उद्यान उजाड़, कुचले विधि, निषेध के हाड़,
उमगा धर्म-प्रबन्ध-बिगाड़, छलिया छल की दाल गलाई।
अ० जी० ज० सु० क्यों० उ० भू० भलाई ॥
अकड़े हेकड़ उन्नत-काय, उछले बल का दर्प दिखाय,
सब को लूट लूट कर खाय, ठगिया ? निगले दूध मलाई।
अ० जी० ज० सु० क्यों० उ० भू० भलाई ॥
पटके लोक-लाज पर डेल, खेला खल-दल में मिल खेल,
रे शठ ? शंकर से कर मेल, योगानल में हठ न जलाई।
अ० जी० ज० सु० क्यों० उ० भू० भलाई ॥१॥
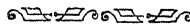
जाति-कण्टक ४३
(दोहा)

खोटे कर्म-कलाप से, प्रकटे मन का मैल।
मत्त-प्रमादी बैल ने, पकड़ी उलटी गैल ॥१॥

कुमार्ग-गामी ४४
(मालती--सवैया)

जाल प्रपञ्च पसार घने, कुल,-गौरव का उर फाड़ रहा है।
मानव-मण्डल में मिल दाहक, दानव-दुष्ट-दहाड़ रहा है ॥
जाति-समुन्नति की जड़ को कर, घोर कुकर्म उखाड़ रहा है।
भूल गया प्रभु-शंकर को जड़, जीवन, जन्म, बिगाड़ रहा है ॥१॥

पतित-प्रमादी ४५

(दोहा)

हाय? अभागे खो चुका, विद्या, बल, धन, धाम ।
दाता से भिक्षुक बना, उलट राम का नाम ॥

सुधार की शिक्षा ४६

(किरीट-सवैया)

सभ्य-समागम के प्रतिकूल न, मूढ़? भयानक-चाल चलाकर ।
वञ्चक? बान बिसार बुरी रच, दम्भ किसी कुल को न छला कर ॥
देख विभूति महज्जन की पड़, शोक-हुताशन में न जलाकर ।
शंकर को भजरे? भ्रमको तज, रे भव का भरपूर भलाकर ॥१॥

कपट-मुनि ४७

(दोहा)

औरों के अगुआ बने, गैल सुगति की भूल ।
नाश करेंगे देशका, ऐसे असुर समूल ॥ १ ॥

भूल की भड़क ४८

(कुण्डलिया-छन्द)

भूले भूल न त्यागते, पकड़ी छल की चाल ।
भोलों के अगुआ बने, जड़-वञ्चक-बाचाल ॥
जड-वञ्चक-बाचाल, बैर की बेलि बढ़ाते ।
पशु पाखण्ड पसार, पाप के पाठ पढ़ाते ॥
उल रहे मद-मत्त, मोह कानन में फूले ।
सत्य-धर्म, शुभकर्म, छोड़ शङ्कर को भूले ॥ १ ॥

अचेत को चेतावनी ४९

(दोहा)

उलझा माया-जाल में, मूढ़ कुटुम्ब समेत।
आता है दिन अन्त का, अब तो चेत अचेत ॥ १ ॥

उलाहना ५०

(गीत)

चूका चाल अचेत अनारी,
नारायण को भूल रहा है ॥ टेक ॥

जीवन, जन्म वृथा खोता है, बीज-अमङ्गल के बोता है,
खेल पसार मोह-माया के, अज्ञों के अनुकूल रहा है।
चू० चा० अ० अ० ना० भूल रहा है ॥

यह मेरा है, वह तेरा है, ममता, परता ने घेरा है,
झंझट, झगड़ों के झूले पै, झकझोटों से झूल रहा है ॥
चू० चा० अ० अ० ना० भूल रहा है ॥

भोग-बिलास रसीले पाये, दारा, पुत्र मिले मन भाये,
मानो मृग-तृष्णा के जल में, व्योम-पुष्प सा फूल रहा है।
चू० चा० अ० अ० ना० भूल रहा है ॥

शंकर ? अन्त-काल आवेगा, कुछ भी साथ न लेजावेगा,
झूँठी उन्नति के अभिमानी, क्यों कुसंग में ऊल रहा है ॥
चू० चा० अ० अ० ना० भूल रहा है ॥१॥

धर्मध्वज ५१

(दोहा)

प्रभुता का प्रेमी बना, प्रभु से किया न मेल।
रे धर्मध्वज पाप के, खुल खुल खेला खेल ॥१॥

उपालम्भ ५२

(गीत)

दुर्लभ नर तन पाय के,
कुछ कर न सका रे ॥ टेक ॥

घोर-कुकर्म महा--पापों से, पल भर भी पछताय के,
ठग डर न सका रे ।
दु० न० पा० कु० कर न सका रे ॥

हा ? प्यारे मानव-मण्डल में, सुकृत-सुधा बरसाय के,
यश भर न सका रे ॥
दु० न० पा० कु० कर न सका रे ॥

वैदिक-देवों के चरणों पै, सेवक-सरल कहाय के,
सिर धर न सका रे ।
दु० न० पा० कु० कर न सका रे ॥

दीन-बन्धु-शंकर-स्वामी से, मन की लगन लगाय के,
भव तर न सका रे ॥
दु० न० पा० कु० कर न सका रे ॥१॥

धिक्पापिष्ट? ५३

(दोहा)

शंकर से न्यारा रहा, धर्म, सुकर्म बिसार ।
कौन उतारेगा तुझे, भव-सागर से पार ॥१॥

मनोमुख-धूर्त ५४

(उग्रदंडक)

सारे धर्म-कर्म छोड़े, गोड़े उद्यम के तोड़े,
मारें ज्ञान के गपोड़े, गीत गौरव के गाते हैं ।

प्यारी वाणी फटकारी, दाया रौंद रौंद मारी,
द्वारी सभ्यता बिसारी, सींग सत्य को दिखाते हैं ॥
मूढ़-मण्डली में झूले, स्वामी शंकर को भूले,
फिरें भंजन से फूले, नाश को न देख पाते हैं ।
ऊँची जाति को लजाते, नीच ता की मार खाते,
पूरे पात की कहाते, जाली-जीवन बिताते हैं ॥१॥

हठीला हेकड़ ५५

[दोहा]

कर्म सुधारेगा नहीं, कुटिल कुकर्मारूढ़ ।
कोरा हठ-वादी बना, मन्द-मनोमुग्ध-मूढ़ ॥१॥

हठ से बिगाड़ ५६

(गीत)

जिस का हठ से हुआ बिगाड़,
उस को कौन सुधार सकेगा ॥टेक॥
हठ को तजे न हठ का दास, फटके न्याय न पशु के पास,
सब का करे सदा उपहास, ऐंठू अड़ न बिसार सकेगा ।
जि० ह० हु० बि० उ० कौ० सु० सकेगा ॥
बञ्चक चतुरों से बद होड़, अटके टांग अकड़ की तोड़,
उजबक बात कहै बेजोड़, हेकड़ नेक न हार सकेगा ॥
जि० ह० हु० बि० उ० कौ० सु० सकेगा ॥
मन का मित्र प्रमाद-प्रचण्ड, तन का पोषक [illegible]-[illegible],
धन से उपजा घोर-घमण्ड, दुर्मत क्यों न प्रचार सकेगा ।
जि० ह० हु० बि० उ० कौ० सु० सकेगा ॥

अपनी जड़ता को जड़ जार, समझे प्रतिभा का अवतार,
शठ के सिर से भ्रम का भार, शंकर भी न उतार सकेगा ॥
जि० ह० हु० धि० उ० कौ० सु० सकेगा ॥१॥

मिथ्या से हानि ५७

(दोहा)

मिथ्या से मिलता नहीं, वैदिक-मत का मर्म ।
पूरा शत्रु असत्य का, सत्य-सनातन-धर्म ॥ १ ॥

हेत्वाभास का उपहास ५८

(गीत)

साधन धर्म कारे,
कर्माभास न होसकता है ॥ टेक ॥
पैर पसार पशुओं के से, कपटी सो सकता है ।
निद्रा हीन बोध विषयोंका, कभी न खो सकता है ॥
सा० ध० क० न हो सकता है ॥
पढ़ पढ़ बोझा सद्ग्रन्थों का, पढुआ ढो सकता है ।
बिन विज्ञान पराविद्या का, बीज न बो सकता है ॥
सा० ध० क० न हो सकता है ॥
भक्त कहाने को ठाकुर का, ठग भी रो सकता है ।
क्या ? शंकर के प्रेमाप्लव में, चञ्चु भिगो सकता है ॥
सा० ध० क० न हो सकता है ॥१॥

ढोंग और हरभोंग ५९

(दोहा)

लूट रहा संसार को, रच रच कोरे ढोंग ।
क्या ? न बिसारेगा कभी, तू अपने हरभोंग ॥ १ ॥

बनावट से बचो ६०

(षट्पदी-छन्द)

ढोंग बनावट से न, किसी का काम चलेगा ।
कृत्रिम-नीरस-वृक्ष, न कोई फूल फलेगा ॥
बना न वाहन-राज, कभी लकड़ी का हाथी ।
सार विहीन असत्य, सत्य का सुना न साथी ॥
कुछ मिथ्या से होता नहीं, आंख उघार निहार लो ।
सुख चाहो तो सद्भाव से, शंकर को उर धार लो ॥१॥

भोंदू भगत ६१

(दोहा)

औरों को ठगता रहा, बैठा अब अनुपाय ।
माला सटकाता फिरे, भोंदू भगत कहाय ॥१॥

बुढ़ापे की भगतई ६२

(दादरा)

ठग बन गया,
ठग बन गया, भगत बुढ़ापे में ॥ टेक ॥
छोड़ा डकैतों की फेंटी में जाना, झांके न वीरों के टापे में ।
ठ० ब० ठ० ब० भ० बुढ़ापे में ॥
बैठा ठिकाने पै देवों को पूजे, पूंजी लगादी पुजापे में ॥
ठ० ब० ठ० ब० भ० बुढ़ापे में ॥
बीती जवानी की मैली पिछौरी, धोने को आया है आपे में ।
ठ० ब० ठ० ब० भ० बुढ़ापे में ॥
खोजायगा शंकरादर्श तेरा, जोपै छपेगा न छापे में ॥
ठ० ब० ठ० ब० भ० बुढ़ापे में ॥ १ ॥

संशयात्मा विनश्यति ६३

[दोहा]

कोरे तर्क वितर्क में, उलझें बाद विवाद ।
अस्थिर जी पाता नहीं, शंकर सत्य-प्रसाद ॥ १ ॥

संशयसंपन्न ६४

[मालती-सवैया]

तीन अनादि, अनन्त मिला कर ऋग्यजु साम अथर्व बखाने ।
नित्य-स्वभाव रचे सब को करतार निरीश्वर–वाद न माने ॥
शंकर का मत ब्रह्म बना जगदद्भुत को भ्रम का फल जाने ।
सत्य-कथा समझें किस की अगुआ अपनी अपनी तक ताने ॥१॥

तार्किक का परोक्ष-पञ्चक ६५

(दोहा)

है कब से, संसार का, कब तक होगा नाश ।
क्या देगा इस प्रश्न का, उत्तर युक्ति–प्रकाश ॥ १ ॥
जन्म लिया, जीता रहा, जोड़ शुभा शुभ कर्म ।
छोड़ गया जो देह को, उस का मिला न मर्म ॥ २ ॥
कौन बिराजे स्वर्ग में, नरक निवासी कौन ।
मुक्त-जीव पाया किसे, सब का उत्तर मौन ॥ ३ ॥
तर्क–प्रमाणों से परे, पितरों का पर लोक ।
सुनते हैं, देखा नहीं, मान लिया रुचि रोक ॥ ४ ॥
लोगों पै खुलते नहीं, जिन विषयों के भेद ।
साधें शब्द-प्रमाण से, उन को, उन के वेद ॥ ५ ॥

दंभ-दशक ६६

(दोहा)

जिन में देखोगे नहीं, पौरुष, धर्म, विवेक ।
ठगते हैं वे देश को, रच पाखण्ड अनेक ॥ १ ॥

विश्व-नाथ, माता, पिता, सद्गुरु, साधु-समाज ।
पाँचो से पहले पुजें, मूढ़-मनोमुख-राज ॥ २ ॥

घेर रहे संसार को, पोच प्रपञ्च पसार ।
दम्भासुर के सूरमा, विचरें लराठ, लबार ॥ ३ ॥

छुआ छूत छौंकें छटे, छलिया गाल बजाय ।
चाल न चूकें ढोंग की, नीच-निरंकुश हाय ॥ ४ ॥

कल्पित-ग्रन्थों को कहैं, सत्य-सनातन-वेद ।
अन्ध-जालिया जाति में, भरते हैं मत-भेद ॥ ५ ॥

मान सच्चिदानन्द के, दूत, पूत, अवतार ।
भूले महिमा ब्रह्म की, अबुध, अविद्याधार ॥ ६ ॥

पोच पुजारी पेट के, पुण्य कलुष को मान ।
देते हैं करतार को, पशुओं के बलि दान ॥ ७ ॥

दाता को परलोक में, मिलते हैं सुख-भोग ।
ऐसे वचनों से बने, दान-वीर लघु लोग ॥ ८ ॥

फैल रहे संसार में, जटिल-मतों के जाल ।
अज्ञानी उलझे पड़े, अटका बन्ध-विशाल ॥ ९ ॥

धोखा है, भ्रम-जाल है, कोरा कपट-प्रयोग ।
बचते हैं पाखण्ड से, साधु-सरल-उद्योग ॥ १० ॥

अड़ोले उपदेशक ६७

(दोहा)
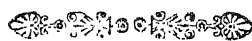
बांके बकवादी बृथा, करते हैं बकवाद ।
हाय ! सुधारेगा किसे, इनका केहरि-नाद ॥ १ ॥

मतवादी वक्ता ६८

(गीत)

वैर विरोध बढ़ाने वाले,
बांके बकवादी बकते हैं ॥ टेक ॥
चारों ओर दहाड़ रहे हैं, पेट प्रेम का फाड़ रहे हैं,
थोथी बातें कहते कहते, बक्कू नेक नहीं थकते हैं
बै० वि० ब० वा० बां० ब० बकते हैं ॥
गर्व-गपोड़े सिखलाते हैं, दर्प दम्भ का दिखलाते हैं,
कपटी पोल खोल औरोंकी, अपने पापों को ढकते हैं ।
बै० वि० ब० वा० बा० ब बकते हैं ॥
मूढ़-मंत्र देते फिरते हैं, धन्यवाद लेते फिरते हैं,
छी छी ? छाक दरिद्र देशकी, छैला छीन छीन छकते हैं ।
बै० वि० ब० वा० बां० ब० बकते हैं ॥
धींग--धसोड़ी हांक रहे हैं, धूलि धर्म की फांक रहे हैं,
शंकर काम सूझतों के से, ये अन्धे क्या कर सकते हैं ।
बै० वि० ब० वा० बां० ब० बकते हैं ॥ १ ॥

प्रमादी-पामर ६९

(दोहा)

बैठे सभ्य-समाज में, सुन डाले उपदेश ।
जड़ ज्योंके त्योंहीं रहे, सुधरे कर्म न लेश ॥ १ ॥

धर्म-शत्रु ७०

(गीत)

जड़ ज्यों के त्यों मति मन्द हैं,
उपदेश घने सुन डाले ॥ टेक ॥

आप न छोड़ें पाप प्रमादी, औरों को बरजें बकबादी,
रसना बनी धर्म की दादी, कटुमुख मूसलचन्द हैं,
शुभ कर्म कुचलने वाले ।
उपदेश घने सुन डाले ॥

सरल-सभ्यता से रीते हैं, भोग भ्रष्ट जीवन जीते हैं,
आमिष खाय, सुरा पीते हैं, कपट--कञ्ज--मकरन्द हैं,
रसिया--मिलिन्द मन काले ।
उपदेश घने सुन डाले ॥

गीत समुन्नति के गाते हैं, पास न उद्यम के जाते हैं,
ठग ठग भोलों को खाते हैं, नटखट अति स्वच्छन्द हैं,
निरखे अलमस्त निराले ।
उपदेश घने सुन डाले ॥

प्रेम कथा कहते रोते हैं, बीज बैर--विष के बोते हैं,
दुर्लभ काल बृथा खोते हैं, बिषधर हैं कब कन्द हैं,
शंकर परखे, परखा ले ।
उपदेश घने सुन डाले ॥ १ ॥

पुरुषाकार-पशु ७१

(दोहा)

समझा दारा, द्रव्य को, अबुध जीवनाधार ।
अन्ध किया अन्धेर ने, पामर--पुरुषाकार ॥ १ ॥

प्रचण्ड-प्रमादी ७२

(त्रिविरामात्मक-राजगीत)

बीते अनेक, वर्ष वृथा, आयु खो रहा ।
सूझे तुझे न, ईश अरे, अन्ध हो रहा ॥
कामारिशत्रु, घेर रहे, नाचता फिरे ।
मारे न इन्हें, मार सहै, भीरु रो रहा ॥
पाला अधर्म, धर्म कभी, धारता नहीं ।
जागे कुकर्म, बोल? कहां, सत्य सो रहा ॥
सीधा सुपन्थ, भूल गया, भेड़—चालिया ।
लादे बटोर, पाप घने, भार ढो रहा ॥
विद्या-विलास, मान रहा, छद्म-वाद को ।
आनन्द-कथा, व्याधिनदी, में डुबो रहा ॥
माने न व्यास, कौन गिने, शंकरादि को ।
कोरा लबार, लग्गठ बड़ों, को बिगो रहा ॥ १ ॥

मदोन्मत्त ७३

(दोहा)

भूला तू भगवान को, रे! मद मत्त अजान ।
पोच प्रतिष्ठा का वृथा, करता है अभिमान ॥ १ ॥

अर्थाभिमानी ७४

(गीत)

तेरे अस्थिर हैं सब ठाठ,
बाबा क्यों घमण्ड करता है ॥ टेक ॥

भिक्षुक और मेदिनी नाथ, सब तज भागे रीते हाथ,
क्या कुछ गया किसी के साथ, तोभी तू न ध्यान धरता है।
ते० अ० स० बा० घ० करता है ॥
उतरी लड़काई की भङ्ग, तड़का तरुणाई का तङ्ग,
जमने लगा जरा का रङ्ग, भूला नेक नहीं डरता है।
ते० अ० स० बा० घ० करता है ॥
होगा मरण–काल का योग, तुझ से छूटेंगे सुख-भोग,
आकर पूछेंगे पुर–लोग, क्यों रे अभिमानी मरता है।
ते० अ० स० बा० घ० करता है ॥
प्यारे चेत प्रमाद बिसार, करले औरों का उपकार,
शंकर–स्वामी को उर धार, यों सद्भक्त जीव तरता है ॥
ते० अ० स० बा० घ० करता है ॥१॥

बुढ़ापे की तृष्णा ७५

[दोहा]

पाय बुढ़ापा देह के, हालगये सब जोड़।
तृष्णा तरुणी को अरे, छलिया अबतो छोड़ ॥१॥

बुढ़ापे का पछतावा ७६

(गीत)

रस चाट चुका लघु जीवन का,
पर लालच हा! न मिटा मन का ॥ टेक ॥
गत शैशव उद्धत ऊल गया, उमगा नव यौवन फूल गया,
उपजाय जरा तन झूल गया, अटका लटका+सटका पन का।
र० चा० चु० ल० जी० प० ला० हा० मि० मन का ॥

(+सटका पन = लाठी के सहारे डगमगा कर चलना

कुल में सविलास विहार किये, अनुकूल घने परिवार किये,
विधि के विपरीत विचार किये, धर ध्यान बधू,वसुधा,धन का ।
र० जा० चु० ल० जी० प० ला० हा० मि० मन का ॥

पिछले अपराध पछाड़ रहे, अब के अघ दोष दहाड़ रहे,
उर दुःख अनागत फाड़ रहे, भवका भय शोक-हुताशन का ।
र० चा० चु० ल० जी० प० ला० हा० मि० मन का ॥

रच ढोंग प्रपञ्च-पसार चुका, सब ठौर फिरा झखमार चुका,
शठ शंकर साहस हार चुका, अब तो रट नाम निरंजन का ॥
र० चा० चु ल० जी० प० ला० हा० मि० मन का ॥ १ ॥

अशुभोन्नति ७७

(दोहा)

उपजावे जो जाति में, बैर विरोध घमण्ड ।
ऐसी उन्नति से उठैं, ऊत असुर उद्दण्ड ॥ १ ॥

निषिद्धोन्नति ७८

(गीत)

रहोरे साधो,
उस उन्नति से दूर ॥ टेक ॥

जिस के साथी लघु छाया के, उपजे ताड़ खजूर ।
फल खोआ ऊँचे चढ़ते हैं, गिरें तो चकनाचूर ॥
रहोरे साधो, उस उन्नति से दूर ॥

जिस से मान बढ़े मूढ़ों का, पण्डित बने मजूर ।
आदर पावे बास बसा की, ठोकर खाय कपूर ॥
रहोरे साधो, उस उन्नति से दूर ॥

जिस के द्वारा उच्च कहाये, कृपण, कुचाली, क्रूर।
मुक्ता बने न्याय--सागर के, हठ-सर के शालूर ॥
रहोरे साधो, उस उन्नति से दूर ॥
जिस के ऊँट नीचता लादें, यश चाहैं भर पूर।
हा ? शंकर पापी बन बैठे, पुराय-समर के शूर ॥
रहो रे साधो, उस उन्नति से दूर ॥ १ ॥

नामी कर्मवीर ७९

(दोहा)

जो बड़भागी साहसी, करते हैं शुभ काम।
रहते हैं संसार में, जीवित उन के नाम ॥ १ ॥

धर्मधुरन्धर ८०

(गीत)

ध्रुवता धार धर्म के काम,
धोरी-धीर-वीर करते हैं ॥ टेक ॥
करते उत्तम कर्मारम्भ, सुकृती गाढ़ें सुकृत-स्तम्भ,
नामी निरभिमान निर्दम्भ, दुष्टों से न कभी डरते हैं।
ध्रु० धा० ध० धो० धी० करते हैं ॥
लक्षण अनुत्साह के झाड़, उर आलस्यासुर का फाड़,
कतरें कठिनाई की आड़, संकट औरों के हरते हैं ॥
ध्रु० धा० ध० धो० धी० करते हैं ॥
प्यारे पौरुष प्रेम पसार, विचरें विद्या-बल विस्तार,
बाँटें निज-कृत आविष्कार, उद्यम देशों में भरते हैं।
ध्रु० धा० ध० धो० धी० करते हैं ॥

प्रेमी पूरा सुयश कमाय, ब्रह्मानन्द महा फल पाय,
शंकर-स्वामी के गुण गाय, ज्ञानी शोक-सिन्धु तरते हैं ॥
ध्रु० धा० ध० धो० धी० करते हैं ॥ १ ॥

उत्तेजन ८१

(दोहा)

शंकर के प्यारे बनो, बैर बिरोध बिसार ।
वैदिक वीरो जातिका, करदो सर्व-सुधार ॥ १ ॥

वैदिक वीरो उठो ८२

(गीत)

वैदिक वीरो सुभट कहाय,
उलटी मत को मार भगा दो ॥ टेक ॥
गरजो ब्रह्म चर्य-बल धार, बाँधो परहित के हथियार,
अपना प्रेम-प्रताप पसार, दुर्गुण-गढ़ में आग लगादो ।
वै० वी० सु० उ० म० मा० भगादो ॥
भ्रम का नाश करो भरपूर, छल का करदो चकनाचूर,
पटको घटिया-पन को दूर, बढ़िया कुल की ज्योति जगादो ।
वै० वी० सु० उ० म० मा० भगा दो ॥
अनुचित विषयों को संहार, फिर आलस्य असुर को मार,
करलो उद्यम पै अधिकार, उन्नति ठगियों को न ठगादो ।
वै० वी० सु० उ० म० मा० भगादो ॥
विचरो बैर बिरोध बिहाय, मानव-मण्डल को अपनाय,
सब से बिरद-बड़ाई पाय, जग में शंकर के गुण गादो ॥
वै० वी० सु० उ० म० मा० भगादो ॥१॥

अब क्या होगा ८३

(दोहा)

भूला भोग-बिलास में, अब लों रहा अचेत ।
फल की आशा छोड़ दे, उजड़ा जीवन खेत ॥१॥

बस बीत चुके ८४

(गीत)

चलोगे बाबा,
अब क्या प्रभु की ओर ॥टेक॥

खेल पसारे बालक पन में, उकसे रहे किशोर ।
आगे चल कर चन्द्र-मुखी के, चाहक बने चकोर ॥
चलोगे बाबा, अब क्या प्रभु की ओर ॥

पकड़े भाग प्रिया-बनिता ने, बतलाये चित-चोर ।
मारे कन्दुक-मदन-दर्प के, गोल-उरोज-कठोर ॥
चलोगे बाबा, अब क्या प्रभु की ओर ॥

दुहिता, पुत्र घने उपजाये, भोग बटोर बटोर ।
अगुआ बने बढ़े कुनबा के, पकड़ा पिछला छोर ॥
चलोगे बाबा, अब क्या प्रभु की ओर ॥

पटके गाल अङ्ग सब झूले, अटके संकट-घोर ।
शंकर जीत जरा ने जकड़े, उतरी मद की खोर ॥
चलोगे बाबा, अब क्या प्रभु की ओर ॥१॥

वृद्धावस्था ८५

(दोहा)

हा ? तारुण्य-तड़ाग के, सूख गये रस-रङ्ग ।
बुढ़िया तो भी पैंठ के, सुनती फिरे प्रसङ्ग ॥ १ ॥

बिगतयौवना ८६

(गीत)

बीता यौवन तेरा,
(री) बुढ़िया बीता यौवन तेरा ॥टेक॥

धौरा रङ्ग जमाय जरा ने, कृष्ण कचों पर फेरा ।
झाड़े दांत, गाल पटकाये, कर डाला मुख भेरा ॥
(री) बुढ़िया बीता यौवन तेरा ॥

आंखों में टेढ़ी चितवन का, बीर ? न रहा बसेरा ।
फीका आनन-मण्डल मानो, विधु बदली ने घेरा ॥
(री) बुढ़िया बीता यौवन तेरा ॥

*झोंझ बया के से कुच झूले, फाड़×मदन का डेरा ।
अब तो पास न झांके कोई, रसिया रस का चेरा ॥
(री) बुढ़िया बीता यौवन तेरा ॥

चेत बुढ़ापे को मत खोवे, करले काम सबेरा ।
अपनाले शंकर स्वामी को, मंत्र समझले मेरा ॥
(री) बुढ़िया बीता यौवन तेरा ॥१॥

मृत्युकीमार ८७

(दोहा)

मरते जाते हैं घने, मानव जीवन भोग ।
तरजाते हैं मृत्यु को, शंकर विरले लोग ॥ १ ॥

महापुरुष मृत्यु को तरजाते हैं ८८

[सगणात्मक–सवैया]

तन त्याग पयाण किये सब ने, न टिके गति-शील गृही, न वनी ।
धर मृत्यु-महासुर ने पट के, कुचले कुल रंक बचे न धनी ॥

(*झोंझ = घोंसला) (×मदन का डेरा = कञ्चुकी)

भव-सागर को न तरे जड़ वे, जिनकी करनी बिगड़ी, न बनी ।
बिन भेद मिले प्रभु-शंकर से, प्रतिभा बिरले बुध पाय घनी ॥१॥

अन्तिम काल ८९

(दोहा)

जीवन पूरा होलिया, अटका अन्तिम काल ।
पकड़ी चोटी मृत्यु ने, अब न बचोगे लाल ॥१॥

जीवनान्त ९०

(गीत)

बारी अब अन्त, काल की आई ॥टेक॥
भोग-बिलास भरे विषयों की, करता रहा कमाई ।
आज साज सब देने पर भी, टिकता नहीं घड़ी भर भाई ॥
बारी अब अन्त, काल की आई ॥
व्याकुल बनिता ने अंसुओं की, आकर धार बहाई ।
पास खड़ा परिवार पुकारे, रोक न सकी सनेह-सगाई ॥
बारी अब अन्त, काल की आई ॥
लगे न औषधि कविराजों ने, मारक-व्याधि बताई ।
नेक न चेत रहा चेतन को, बिछुड़ी गैल गमन की पाई ॥
बारी अब अन्त, काल की आई ॥
प्राण पखेरू तन-पंजर से, भागा कुछ न बसाई ।
काल पाय हम सब की होगी, हा! शंकर इस भांति बिदाई ॥
बारी अब अन्त, काल की आई ॥१॥

शव निरूपण ९१

(दोहा)

ज्ञान, क्रिया धारे नहीं, चेतन, जड़ का योग ।
ऐसे दैहिक-दृश्य को, मृतक मानते लोग ॥ १ ॥

मृतक शरीर ९२

(गीत)

घर में रहा न रहने वाला ॥ टेक ॥

खोल गया सब द्वार किसी में लगा न फांटक ताला ।
आय निशङ्क अदृष्ट वली ने घेर घसीट निकाला ॥
घर में रहा न रहने वाला ॥

जाने किस पुर की बाखर में, अवकी वार बिठाला ।
हा? मासादिक परिवर्तन का, अटका कष्ट कसाला ॥
घर में रहा न रहने वाला ॥

ढंग विगाड़दिया मन्दिर का, अङ्ग भङ्ग कर डाला ।
श्रीहत हुआ अमङ्गल छाया, कहीं न ओज उजाला ॥
घर में रहा न रहने वाला ॥

शंकर ऐसे पर-बन्धन से, पड़े न पल को पाला ।
आग लगे इस बन्दी-गृह में, मिले महा-सुख-शाला ॥
घर में रहा न रहने वाला ॥ १ ॥

रूप गर्विता ९३

(सोरठा)

हाय? अचानक आज, रूप गर्विता मर गई ।
छोड़ गया रसराज, घर को सूना कर गई ॥ १ ॥

सौन्दर्य की दुर्दशा ९४

(गीत)

नबेली अलबेली उठ बोल ? ॥ टेक ॥

वेणी-नागिन विकल पड़ी है, शिथिल माँग-मुख खोल।
खंजरीट, मृग खोल रहे हैं, नयन-सुयश की पोल ॥
नवेली अलबेली उठ बोल ? ॥
लाल-अधर-बिम्बा-फल सूखे, पड़ गये पीत कपोल।
दशन-मोतियों की लड़ियों का, अब न रहा कुछ मोल ॥
नवेली अलबेली उठ बोल ? ॥
कंबु-कण्ठ-कल-कण्ठ न कूके, दबकी दमक-अतोल।
गड़ें न रसियों की छतियों में, कठिन पयोधर गोल ॥
नवेली अलबेली उठ बोल ? ॥
परखी सब कोमल-अङ्गों में, अकड़ टटोल टटोल।
हा ? शंकर क्या अब न बजेगा, मदन-विजय का ढोल ॥
नवेली अलबेली उठ बोल ? ॥ १ ॥
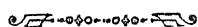
अनुभूत--भावना ९५

(दोहा)

देखी खर की दुर्दशा, उपजा उत्तम-ज्ञान।
शंकर ने देहादि का, दूर किया अभिमान ॥ १ ॥
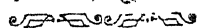
गर्दभ-दुर्दृश्य ९६

(गीत)

घूरे पर घबराय रहा है,
देखो रे इस व्याकुल खर को ॥ टेक ॥
और घने रासभ चरते थे, धंगने धार पेट भरते थे,
छोड़ इसे अनखाय कुम्हारी, सब को हाँक ले गई घर को।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को ॥

आगे गुड़हर, घास नहीं है, गदली पोखर पास नहीं है,
हा ? पानी बिन तड़प रहा है, लोटेपोटे इधर उधर को ।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को ॥
लीद लपेटा बिकल पड़ा है, चक्र काँच का निकल पड़ा है,
मूत कीच में उछल रही है, ओछी पूंछ डुलाय चमर को ।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को ॥
घाइल घोर-कष्ट सहता है, ठौर ठौर शोणित बहता है,
मार मक्खियां भिनक रही हैं, काट रहे हैं कीट कमर को ।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को ॥
कुक्कुर तङ्कड़ तोड़ चुके हैं, वायस अँखियां फोड़ चुके हैं,
गीदड़ अंतड़ी काढ़ चुके हैं, ताक रहे हैं गिद्ध उदर को ।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को ॥
मरण–काल ने दीन किया है, अवगति ने बल–हीन किया है,
मींच घींच धर भींच रही है, खींच रही है प्रेत-नगर को ।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को ॥
जीवन खेल खिलाय चुका है, भोग-विलास बिलाय चुका है,
जीव–हंस अब उड़ जावेगा, त्याग पुराने तन–पञ्जर को ।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को ॥
ऐसा देख अमंगल इस का, कातर चित्त न होगा किस का,
तन अभिमान भजो रे भाई, करुणा-सिन्धु सत्य–शंकर को ।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को ॥ १ ॥

पर-धर्म से हानि ९७

(दोहा)

लाद पराये धर्म का, संकट-भार अतोल ।
तोता पिंजड़े में पड़ा, बोल मनुज के बोल ॥ १ ॥

तोते पर अन्योक्ति ९८

(गीत)

तोते तू तेरे करतब ने,
इस बन्धन में डाला है रे ? ॥ टेक ॥
सुन सीखे जो शब्द हमारे, उन को बोल रहा है प्यारे,
मिट्ठू तुझे इसी कारण से, कनरसियों ने पाला है रे ? ।
तो० ते० क० इ० बं० डाला है रे ? ॥
हा ? कोटर में बास नहीं है, प्यारा कुनबा पास नहीं है,
लोह-तीलियों का घर पाया, अटका कष्ट-कसाला है रे ? ॥
तो० ते० क० इ० बं० डाला है रे ? ॥
सुआ सैंकड़ों पढ़ने वाले, पकड़ बिल्लियों ने खा डाले,
तू भी कल कुत्ते के मुख से, प्राण बचाय निकाला है रे ? ॥
तो० ते० क० इ० बं० डाला है रे ? ॥
पञ्जे नहीं छुड़ा सकते हैं, क्या ये पंख उड़ा सकते हैं,
चोंच न काटेगी पिंजड़े को, शंकर ही रखवाला है रे ? ॥
तो० ते० क० इ० बं० डाला है रे ? ॥१॥

विवेक से शान्ति ९९

(दोहा)

समझी थी संयोग को, मन की भूल वियोग ।
आज विवेकानन्द ने, दूर किया भ्रम-रोग ॥१॥
वस्तु-रूप से एक हैं, आकृति जाति अनेक ।
देह देह में जीव का, दीपक तुल्य विवेक ॥२॥

योग-माधुर्य १००

(सोरठा)

आज बिरह की आग, तुझ से मिलते ही बुझी।
मुझ अबला को त्याग, शंकर ? अब जाना नहीं ॥१॥

योगपर अन्योक्ति १०१

(गीत)

आज मिला बिछुड़ा बर मेरा,
पाया अचल सुहाग री ?॥ टेक ॥

भवका बेग वियोगानल का, स्रोत जलाया धीरज-जल का,
डूबी सुरत प्रेम—सागर में, बुझी न उर की आग री ?।
आ० मि० बि० मे० पा० अ० सुहाग री ? ॥

इत, उत थांग लगाती डोली, ठगियों की ठनगई ठठोली,
हुआ न सिद्ध मनोरथ तोभी, और बढ़ा अनुराग री ? ॥
आ० मि० बि० मे० पा० अ० सुहाग री ? ॥

ठौर ठौर भटकी भटकाई, सुधि न माया-वल्लभ की पाई,
साहस ने पर हार न मानी, लगी लगन की लाग री ? ॥
आ० मि० बि० मे० पा० अ० सुहाग री ? ॥

एक दया-निधि ने कर दाया, तुरत ठिकाना ठीक बताया,
पहुंची पास पिया शंकर के, इस बिधि जागे भाग री ? ॥
आ० मि० बि० मे० पा० अ० सुहाग री ? ॥१॥

संयोग से वियोग १०२

[दोहा]

जीव जन्म से अन्त लों, आयु यथा क्रम भोग।
करते हैं संसार से, योग बिसार बियोग ॥१॥

प्रयाण पर अन्योक्ति १०३

(गीत)

है परसों रात सुहाग की,
दिन बर के घर जाने का ॥टेक॥

पीहर में न रहैगी प्यारी, हा ? होगी हम सब से न्यारी,
चलने की करले तैयारी, बन मूरति अनुराग की,
धर ध्यान उधर जाने का ।
दिन बर के घर जाने का ॥

पातिव्रत से प्यारे पति को, जो पूजेगी धार सुमति को,
तो न निहारेगी दुर्गति को, लगन लगा अति-लागकी,
प्रण रोप निडर जाने का ॥
दिन बर के घर जाने का ॥

गङ्गा पावे सत्य-बचन की, यमुना आवे सेवा-तन की,
हो सरस्वती श्रद्धा-मन की, महिमा प्रकट प्रयाग की,
रच रूपक तरजाने का ।
दिन बर के घर जाने का ॥

शंकर-पुर को तू जावेगी, सुख-संयोगामृत पावेगी,
गीत महोत्सव के गावेगी, सुधि बिसार कुल-त्याग की,
सखी सोच न कर जाने का ॥
दिन बर के घर जाने का ॥१॥

अन्योक्ति से योग शिक्षा १०४

(दोहा)

ज्ञातयौवना हो चुकी, गुड़ियों से मत खेल ।
पूरा पूरा कर सखी, शंकर-पिय से मेल ॥ १ ॥

अन्योक्ति से उपदेश १०५

(गीत)

सजले साज सजीले सजनी,
मान बिसार मनाले बर को ॥ टेक ॥

गौरब-अङ्गराग मलवाले, मेल-मिलाप तेल डलवाले,
न्हाले शुद्ध-सुशील-सलिल से, काढ़ कुमति-मैली चादर को ।
स० सा० स० स० मा० म० बर को ॥

ओढ़ सुमति की उज्ज्वल सारी, सद्गुण-भूषण धार दुलारी,
सीस गुँदाय नीति-नाइन से, कर टीका करुणा-केसर को ॥
स० सा० स० स० मा० म० बर को ॥

आदर-अंजन आंज नवेली, खाकर प्रेम-पान अलबेली,
धार प्रसिद्ध-सुयश की शोभा, दमका ले आनन-सुन्दर को,
स० सा० स० स० मा० म० बर को ॥

मेरी बात मान! अवसर है, यौवन-काल बीत ने पर है,
तू यदि अब न रिझावेगी तो, फिर न सुहावेगी शंकर को ।
स० सा० स० स० मा० म० बर को ॥ १ ॥

उपदेशकोंद्वारा उद्धार १०६

[दोहा]

ब्रह्म-विवेकानन्द से, जीवन, जन्म सुधार ।
करते हैं संसार का, उपदेशक उद्धार ॥ १ ॥

सुधारक-सिद्ध-समूह १०७

(सुन्दरी-सवैया)

इस स्वर्ग-सहोदर-भारत का, बुध-वैदिक-वीर सुधार करेंगे ।
अपनाय प्रथा-मुनि-मण्डल की, कवि शंकर! धर्म-प्रचार करेंगे ॥

अनुकूल-अखण्ड-तपोबल पै, व्रतशील निरन्तर प्यार करेंगे ।
कर मेल अमायिक आपस में, सुकृती सब का उपकार करेंगे ॥१॥

धर्म–घोषणा १०८

(दोहा)

काढ़ो मानव–जाति के, जीवन का शुभ–सार ।
साधु ! सुधारो देश को, सामाजिक–बल धार ॥ १ ॥

धर्मवीरों की कर्म–वीरता १०९

(मायात्मक-लावनी)

जिन को उत्तम उपदेश, महा–फल पाया ।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया ॥ टेक ॥
बन गये सुबोध, विनीत, ब्रह्म––अनुरागी ।
उमगे बल, पौरुष पाय, शिथिलता त्यागी ॥
कर सिद्ध विविध व्यापार, कर्म–जय जागी ।
उन्नति का देख उठान, अधोगति भागी ॥
फटके जिन के न समीप, मोह––मय–माया ।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया ॥ १ ॥

सब ने सब दोष विसार, दिव्य–गुण धारे ।
तज बैर निरन्तर––प्रेम–प्रसंग प्रचारे ॥
चेतन, जीवित, ऋषि, देव, पितर, सत्कारे ।
कर दिये दूर खल–खर्ब, कुमति के मारे ॥
जिन के कुल में सुख-मूल, सुधार समाया ।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया ॥ २ ॥

मंगल-कर वैदिक-कर्म, किया करते हैं।
ध्रुव-धर्म-सुधा भर पेट, पिया करते हैं॥
भर-शक्ति यथा-विधि दान, दिया करते हैं।
कर जीवन, जन्म पवित्र, जिया करते हैं॥
जिन का शुभ-काल कुयोग, मिटा कर आया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥ ३॥

द्विज ब्रह्मचर्य-व्रत-शील, वेद पढ़ते हैं।
गौरव-गिरि पै पग रोप, रोप चढ़ते हैं॥
अभिलषित-लक्ष्य की ओर, वीर बढ़ते हैं।
गुरु-कुल-सागर से रत्न, रूप कढ़ते हैं॥
जग-जीवन जिन के वंश, विटिप की छाया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥ ४॥

नव-द्रव्य-जन्य-गुण, दोष, भेद, पहँचाने।
कृषि-कर्म रसायन, शिल्प, यथा-विधि जाने॥
दर्शन, ज्योतिष, इतिहास, पुराण बखाने।
पर जटिल-गपोड़े वेद विरुद्ध न माने॥
सब ने कोविद, कविराज, जिन्हें बतलाया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥ ५॥

विदुषी-दुलहिन पौगण्ड, विज्ञ बरते हैं।
बल-नाशक-बाल-विवाह, देख डरते हैं॥
विधवा-बर बन वैधव्य, दूर करते हैं।
अथवा नियोग-फल सोंप, शोक हरते हैं॥
जिन की विधि ने कुलबोर, निषेध मिटाया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥ ६॥

ऋजु–गति-शासन को शुद्ध, न्याय कहते हैं।
कटु–कुटिल–नीति से दूर, सदा रहते हैं॥
समुचित–पद्धति की गम्य, गैल गहते हैं।
अनुचित–कुचाल का दर्प, नहीं सहते हैं॥
अभिमान–अधम का भाव, न जिनको भाया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥ ७॥

घर छोड़ देश पर–देश, निडर जाते हैं।
व्यवसाय–शील सब ठौर, सुयस पाते हैं॥
अति–शुद्ध अनामिष-अन्न, सरस खाते हैं।
पर छुआ छूत रच दम्भ, न दिखलाते हैं॥
जिन का व्यवहार–विलास, प्रशस्त कहाया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥ ८॥

हित कर अपना प्रत्येक, शुद्ध–जीवन से।
मन–शुद्ध, किये मल दूर, गिरा से तन से॥
मठ कपट—मतों के फोड़, उग्र–खण्डन से।
जड़—पूजन की जड़ काट, मिले चेतन से॥
जिन के आचरण विलोक, लोक ललचाया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥ ९॥

रच ग्रन्थ घने प्रिय–पत्र, अनेक निकाले।
बन कर गोपाल, अनाथ, अकिञ्चन पाले॥
नर, नारि अवैदिक भिन्न, भिन्न मत वाले।
रच वर्ण-यथा–गुण–कर्म, शुद्ध करडाले॥
शंकर ने जिन पर धर्म, मेघ बरसाया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥ १०॥

रामलीला ११०

(दोहा)

साधन है सद्धर्म का, राम-चरित्र उदार ।
प्यारे! अपना ले इसे, जीवन, जन्म सुधार ॥ १ ॥

(मायात्मक-लावनी)

प्रभु शंकर को अपनाय, समाज सुधारो ।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥ टेक ॥
सुत—हीन--दीन--अवधेश, घना घबराया ।
गुरु से सदुपाय बिषाद, सुना कर पाया ॥
शृङ्गी ऋषि बरद बुलवाय, सु याग रचाया ।
खाकर हवि-शेष सगर्भ, हुई नृप-जाया ॥
मख-महिमा यों सब ओर, सु बुध बिस्तारो ।
पढ़ राम--चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥१॥

धन कौशल्या! सुख--सदन, राम जनमाये ।
केकय--तनया ने भरत, भागवत जाये ॥
सौमित्र सहोदर लखन, अरिघ्न कहाये ।
सुत--वेद-चुतुष्टय--रूप, नृपति ने पाये ॥
उपजें इस भाँति सु पुत्र, मिलें×फल चारो ।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥ २ ॥

प्रकटे अवनीश-कुमार, मनोहर चारो ।
करते मिल बाल-बिनोद, बन्धु--बर चारो ॥

× फल चारो = धर्म १ अर्थ २ काम ३ मोक्ष ४ ।

गुरु-कुल में रहे समोद, धर्म--धर चारो ।
पढ़ वेद बोध--बल पाय, बसे घर चारो ॥
इमि ब्रह्मचर्य--व्रत धार, विवेक पसारो ।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ३ ॥

रघुराज--रजायुस पाय, बाण, धनु धारे ।
मुनि साथ राम--अभिराम, सबन्धु सिधारे ॥
गुरु-कौशिक से गुण सीख, सांमरिक सारे ।
मख--मंगल-मूल रखाय, असुर संहारे ॥
ऋषि-रक्षक यों बन वीर, दुष्ट--दल मारो ।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ४ ॥

मुनि-गाधि-पुत्र भट श्याम, गौर बल-धारी ।
पहुँचे मिथिलापुर राज, विभूति निहारी ॥
शिव-धनुप राम ने तोड़, पाय यश भारी ।
व्याही विधि सहित समोद, विदेह-कुमारी ॥
करिये इस भांति विवाह, कुलीन-कुमारो ।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ५ ॥

अब लखन, जानकी, राम, अवध में आये ।
घर घर बाजे सुख--मूल, बिनोद--बधाये ॥
हित, प्रेम, राज--कुल और, प्रजा पर छाये ।
सब ने दिन बैर--विरोध, बिसार बिताये ॥
इस भाँति रहो कर मेल, भले परिवारो ।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ६ ॥

नृप ने सुख का सब ठौर, विलोक बसेरा।
कर जोड़ कहा यह ईश, सुयश है तेरा॥
अब राम बने युवराज, भरे मन मेरा।
रवि—वंश दिपे कर अस्त, अधर्म—अँधेरा॥
सुत-सज्जन का इस भाँति, सुभद्र विचारो।
पढ़ राम—चरित्र—पवित्र, मित्र उर धारो॥७॥

अभिषेक—कथा सुन मित्र, अमित्र, उदासी।
उलही मिल सब की चाह, कल्प-लतिका सी॥
बर केकय—तनया माँग, उठी कुदशा सी।
युव-राज भरत हो राम, बने वन—बासी॥
कर यों कुनारि पर प्यार, न जीवन हारो।
पढ़ राम—चरित्र—पवित्र, मित्र उर धारो॥८॥

सुन, देख, कराल, कठोर, कुहाव—कहानी।
बरजी परिणाम सुझाय, न समझी रानी॥
जब मरण-काल की व्याधि, कुपति ने जानी।
उमड़ा तब शोक—समुद्र, बहा वर दानी॥
बर नारि अनेक न उग्र, अनीति उघारो।
पढ़ राम—चरित्र—पवित्र, मित्र उर धारो॥९॥

सुधि पाकर पहुँचे राम, राज-दर्शन को।
सकुचे पग पूज कुदृश्य, न भाया मन को॥
सुन बचन पिता के मान, धर्म—पालन को।
कर जोड़ कहा अब तात!, चला मैं वन को॥
पितु पायक यों बन धाम, धरा—धन वारो।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो॥१०॥

मिल कर जननी से माँग, असीस, विदाई।
हठ जनक सुता की भक्ति, भरी मन भाई ॥
सुन लक्ष्मण का प्रण-पाठ, कहा चल भाई ! ।
घर तज सानुज-सस्त्रीक, चले रघुराई ॥
निज नारि-सती, प्रिय-बन्धु, न वीर बिसारो ।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ११ ॥

पहुँचे पुनि पितु के पास, अवध के प्यारे ।
झट भूषण, वस्त्र उतार, साधु-पट धारे ॥
सब से मिल-भेंट सु भोग, बिलास बिसारे ।
रथ पै चढ़ वन की ओर, सशस्त्र सिधारे ॥
बन कर्म-वीर इस भांति, स्वभाव सँवारो ।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥ १२ ॥

तमसा तक पहुंचे लोग, प्रेम—रस—पागे ।
तट पै बिन—चेत प्रसुप्त, पड़े सब त्यागे ॥
सिय, राम, सचिब, सौमित्र, चल दिये आगे ।
उठ भोर, गये घर लौट, अधीर—अभागे ॥
मन को इस भाँति वियोग, उदधि से तारो ।
पढ़ राम-चरित्र—पवित्र, मित्र उर धारो ॥ १३ ॥

रथ शृङ्गवेरपुर तीर, वीर-बर लाये ।
गुह ने मिल भेंट समोद, उतार टिकाये ॥
सब ने वह रात बिताय, न्हाय, फल खाये ।
रघुनायक ने समझाय, सचिव लौटाये ॥
सुजनों पर यों अनुराग, विभूति बगारो ।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥ १४ ॥

सुर-सरिता-तीर नवीन,-विरक्त पधारे।
पग धोय +धनुक ने पार, तुरन्त उतारे ॥
पहुंचे प्रयाग वृत-शील, स्वदेश-दुलारे।
मुनि-मण्डल ने हित प्रेम, पसार निहारे ॥
इस भांति अतिथि को पूज, सदय सत्कारो।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥१५॥

गुरु-भरद्वाज ने सुगम, गैल बतलाई।
यमुना को उतरे सहित, सीय दोऊ भाई ॥
निशि बाल्मीक मुनि निकट, सहर्ष बिताई।
चढ़ चित्रकूट पै विरम, रहे रघुराई ॥
इस भाँति सहो सब कष्ट, दयालु उदारो।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उरधारो ॥ १६ ॥

बन से न फिरे रघुनाथ, न लक्ष्मण सीता।
पहुँचा सुमंत्र नृप तीर, धीर धर जीता ॥
बिलखे नर नारि निहार, खड़ा रथ रीता।
दशरथ का जीवन--काल, राम बिन वीता॥
मरना इस भाँति न ज्ञान, गमाय गमारो।
पढ़ राम चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥ १७ ॥

गुरु ने परिताप अँगार, अनेक बुझाये।
सुधि भेज भरत, शत्रुघ्न, तुरन्त बुलाये ॥
नृप का शव दाह कराय, सुधी समझाये।
पर वे परपद का लोभ, न मन में लाये ॥

+ धनुक = केवट — मल्लाह —

बस अनधिकार की ओर, न वीर निहारो ।
पढ़ राम–चरित्र–पवित्र,–मित्र उर धारो ॥१८॥

घर घोर अमङ्गल–मूल, अनीति निहारी ।
समझी अवनति का हेतु, सगी महतारी ॥
सकुचे रघुपति की गैल, चले प्रण धारी ।
लग लिया भरत के साथ, दुखी दल भारी ॥
धर पकड़ वैर की फूट, फोड़ फट कारो ।
पढ़ राम–चरित्र–पवित्र,–मित्र उर धारो ॥ १९ ॥

मिल भेट लिया गुह साथ, प्रयाग अन्हाये ।
चढ़ चित्रकूट पर प्रेम, प्रबाह बहाये ॥
प्रभु पाहि नाम कर दण्ड, प्रणाम सुनाये ।
झपटे सुन राम उठाय, कण्ठ लिपटाये ॥
इस भांति मिलो,कुल-धर्म,-अशोक-कुठारो ।
पढ़ राम–चरित्र–पवित्र,–मित्र उर धारो ॥२०॥

सब ने मिल भेंट समिष्ट, प्रसङ्ग बखाना ।
सुन मरण पिता का राम कुढ़ दुख माना ॥
पर ठीक न समझा लौट, नगर को जाना ।
+जड़-भरत पादुका पाय, फिरे प्रण ठाना ॥
व्रत-जल से विधि के पैर, सुपुत्र पखारो ।
पढ़ राम–चरित्र–पवित्र, मित्र उर धारो ॥२१॥

कर जोड़ जोड़,कर, यत्न, अनेक मनाये ।
पर डिगे न प्रण से राम, महाचल पाये ॥

+ जड़ भरत = राम के प्रेम से अधीर होकर सुधबुध भूलगये ।

हिय हार हार नर नारि, अवध में आये ।
बिन बन्धु भरत ने दीन, बन्धु अपनाये ॥
प्रतिनिधि बन औरों कीन, धरोहर मारो ।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥२२॥

परिवार, प्रजा कुल से न, कभी मुख मोड़ा ।
मनु-हायन भर को नेह, विपिन से जोड़ा ॥
नटखट वायस का अक्ष, मार शर फोड़ा ।
गिरि-चित्र कूट बहु काल, बिता कर छोड़ा ॥
विचरो सब देश विदेश, विचार प्रचारो ।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥२३॥

अब दण्डक-वन का दिव्य,-दृश्य मन भाया ।
बध कर बिराध को गाढ़, कुयोग मिटाया ॥
मुनि मण्डल को पग पूज, पूज अपनाया ।
फिर पंचवटी पर जाय, बसे सुख पाया ॥
समझो समाज के काज, कृपा कर सारो ।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥२४॥

तरु फूल फले छबि राम,-कुटी पर छाई ।
धर सूर्पनखा बर-वेष, अचानक आई ॥
कुल-बोर मनोरथ-सिद्ध, नहीं कर पाई ।
कर लक्ष्मण ने श्रुति नाक, विहीन हटाई ॥
इमि एक नारि-व्रत-शील, रहो जड़-जारो ।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥२५॥

नकटी खर, दूषण-सेन, चढ़ा कर लाई ।
रघुपति ने सब को मार, काट जय पाई ॥

फिर रावण की करतूति, समस्त सुनाई।
सुन मान बहन की बात, चला भट-भाई॥
धिक् नाक कटाय न ठौर, ठौर झखमारो।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो॥२६॥

चढ़ पञ्चवटी पर दुष्ट, *दशानन आया।
मिल कर मारीच कुरङ्ग, बना रच माया॥
सिय ने पिय को पशु-बध्य, बिचित्र बताया।
झट राम उठे शर-लक्ष्य, पिशाच बनाया॥
छल-मैल हटा कर न्याय, सु नीर निथारो।
पढ़ राम-चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो॥२७॥

मृग भाग चला बिकराल, बिपति ने घेरा।
रघुनायक ने खल खेल, खिलाय खदेरा॥
शर खाय मरा इस भाँति, पुकार घनेरा।
चल, दौड़, सुहृद-सौमित्र, दुःख हर मेरा॥
जमता न कपट का रङ्ग, सदैव लबारो।
पढ़ राम-चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो॥२८॥

सुन घोर अमंगल-नाद, दुष्ट-सम्मति का।
सिय ने समझा वह बोल, प्रतापी पति का॥
उस ओर लखन को भेज, तोख दे अति का।
रह गई कुटी पर खोल, द्वार दुर्गति का॥
भ्रम, भेद, भूल, भय, शोक, लुकें ललकारो।
पढ़ राम-चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो॥२९॥

---

* दशों दिशाओं में रावण का कोई रोक ने वाला नहीं था इसी कारण से उस का एक नाम "दशानन" भी पड़गया—

मुनि बन पहुँचा लंकेश, कुशील पुकारा।
यति जनक-सुता ने जान, असुर सत्कारा॥
पकड़ी ठग ने निज-मींच, अमङ्गल--धारा।
हित कर कुलटा का बज्र, सती पर मारा॥
अधमाधम को सब साधु, अधिक धिक्कारो।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो॥ ३० ॥

हर जनक सुता को मूढ़, महाधम लाया।
मगमें प्रचण्ड रण रोप, जटायु गिराया॥
चढ़ व्योम-याल पर नीच, निरङ्कुश आया।
रखली घर पाप कमाय, हाय पर-जाया॥
मत चोर बनो कुल-बोर, बलिष्ट बिजारो।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो॥ ३१ ॥

मृग--रूप-निशाचर मार, फिरे रघुराई।
अध बर में बन्धु बिलोक, बिकलता छाई।
मिल कर आश्रमको लौट, गये दोऊ भाई॥
पर जनकनान्दिनी हा! न, कुटी पर पाई।
ध्रुव--धर्म--धुरन्धर--धीर, अनिष्ट सहारो।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो॥ ३२ ॥

अति व्याकुल सानुज-राम, बिरह के मारे।
सब ओर फिरे सब ठौर, अधीर पुकारे॥
गिरि, गह्वर, कानन, कुंज, कछार, निहारे।
पर मिला न सिय का खोज, खोज कर हारे॥
इस भांति वियोग-समुद्र, सराग मझारो।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो॥ ३३ ॥

कढ़ गई किधर को लाँघ, धनुष की रेखा ।
इस भाँति किया अनुराग, पसार परेखा ॥
मग में फिर घाइल-अङ्ग, गृद्ध-पति देखा ।
मर गया सुना कर सीय, हरण का लेखा ॥
उपकार करो कर कोटि, उपाय उदारो ।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो ॥३४॥

सुन रावण की कर तूति, जटायु जलाया ।
निरखे वन, मार कबन्ध, बसन्त न भाया ॥
फिर शवरी के फल खाय, महेश मनाया ।
टिक पम्पापुर पर ऋष्य,--मूकपुनि पाया ॥
कर पौरुष मानव-धर्म, स्वरूप निखारो ।
पढ़ राम-चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो ॥३५॥

रघुनाथ लखन को देख, कीश घबराये ।
समझे विधि क्या?भटबालि, प्रबल के आये ॥
वन विप्र मिले हनुमान, पीठ धर लाये ।
नर वानर-पति ने पूज, सुमित्र बनाये ॥
कर मेल पियो इस भाँति, प्रेम--रस प्यारो।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो ॥३६॥

रघुनायक ने निज--वृत्त, समस्त बखाना ।
सुन कर हरीश का हाल, घना दुख माना ॥
शुभ समझ बन्धु से बन्धु, सभेद लड़ाना ।
प्रण वालि-निधन का ठोस, ठसक से ठाना ॥
दृढ़ टेक टिका कर सत्य, बचन उच्चारो ।
पढ़ राम--चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥३७॥

शर मार मही पर हाड़, ताड़, तरु, डाले ।
फिर कहा विजय सुग्रीव, बालि पर पाले ॥
ललकार लड़े हरि-बन्धु, कुभाव निकाले ।
लुक रहे विटप की ओट, राम रखवाले ॥
दब को करिये पर काज, न खांस मठारो ।
पढ़ राम-चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ३८ ॥

समझे जब राम, सुकण्ठ, समर में हारा ।
तब तुरत बालि बलवान, मार शर मारा ॥
फिर अङ्गद को अपनाय, मना कर तारा ।
कर दिया सखा कपि-राज, मिटा दुख सारा ॥
ढकलो अति-गूढ़-महत्व, ममाग्र-पिटारो ।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ३९ ॥

अभिषेक हुआ सुख-साज, समङ्गल साजे ।
अभिनन्दन--सूचक--शंख, ढोल, ढप, बाजे ॥
उमगी बरसात खगोल, घेर घन गाजे ।
पर्वत पर बिरही राम, सबन्धु बिराजे ॥
तज कपट सुमित्रादर्श, बनो सब यारो ।
पढ़ राम-चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ४० ॥

सुख रहित राम ने गीत, विरह के गाये ।
बरसात गई दिन शुद्ध, शरद के आये ॥
कपिनायक ने भठ--कीश, भालु बुलवाये ।
सिय की सुधि को सब, ओर बरूथ पठाये ॥
करिये प्रिय-प्रत्युपकार, सुचरितागारो ।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ४१ ॥

रघुपति ने सिय के चिन्ह, विशेष बताये ।
मुँदरी लेकर हनुमान, ससैन सिधाये ॥
निरखे परखे सब देश, सिन्धु-तट आये ।
पर लगी न कुछ भी थाँग, थके अकुलाये ॥
तजिये न अनुष्ठित-कर्म, सुकृत आधारो ।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ४२ ॥

सब कहैं मरे प्रभु--काज, नहीं कर पाया ।
सुन कर उमगा सम्पाति, पता बतलाया ॥
उछला जलनिधि को लाँघ, प्रभञ्जन जाया ।
रिपु--गढ़ में किया प्रवेश, क्षुद्र कर काया ॥
फल मान असम्भव का न, प्रवीण बनारो ।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ४३ ॥

सिय का उपताप घटाय, दूर कर शङ्का ।
कपि हुआ प्रसिद्ध बजाय, विजय का डंका ॥
बँध गया, छुटा, खुल खेल, जला कर लङ्का ।
चल दिया शिरोमणि पाय, वीर--बर--बंका ॥
कर स्वामि-काज इस भाँति, कूद किलकारो ।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ४४ ॥

कर काज मिला हनुमान, भालु कपि ऊले ।
पहुँचे सुकण्ठ--पुर पेड़, पेड़ पर झूले ॥
प्रभु को सब हाल सुनाय, खाय फल फूले ।
मणि-जनक-सुता की देख, राम सुधि भूले ॥
कर विनय प्रेम--प्रासाद, विनीत--बुहारो ।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ४५ ॥

रघुबर ने सिय की थाँग, सुनिश्चित पाई ।
करदी रिपु-गढ़ की ओर, तुरन्त चढ़ाई ॥
कपि-भालु-चमू प्रभु साथ, असंख्य सिधाई ।
अविराम चली भट-भीड़, सिन्धु-तट आई ॥
अनघा-धन को कर यत्न, अनेक उबारो ।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र,-मित्र उर धारो ॥४६॥

हठ पकड़ रहा लङ्केश, सुमंत्र न माना ।
चल दिया विभीषण बन्धु, काल-वश जाना ॥
समझा रघुपति के पास, पुनीत ठिकाना ।
मिल गया कटक में दास, कहाय बिराना ॥
बस यों सिर से भय-भार, न भीरु उतारो ।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो ॥४७॥

पुल बाँध जलधि का पार, गये दल सारे ।
उतरे सुबेल पर राम, सबन्धु सुखारे ॥
पहुँचा अङ्गद बन दूत, बचन बिस्तारे ।
करले रघुपति से मेल, दशानन प्यारे ॥
अरि-कुल का भी घर घेर, वृथा न उदारो ।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो ॥४८॥

सुन बालि-तनय की बात, न ठग ने मानी ।
छल-बल-पावक पर हा! न, पड़ा हित-पानी ॥
रघुनायक ने अनरीति, असुर की जानी ।
कर कोप उठे भट-मार, ठना ठन ठानी ॥
अधमाधम रिपु को शूर, सकुल संहारो ।
पढ़ राम--चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥४९॥

चट पट रण-चण्डी चेत, चढ़ी कर तोले ।
झट नयन रुद्र ने तीन, प्रलय के खोले ॥
गरजे जय के हरि, स्यार, अजय के बोले ।
हलचल में हर्ष, विषाद, थिरकते डोले ॥
इस भाँति महारण रोप, हुमक--हुंकारो ।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ५० ॥

भिड़ गये भालु, कपि वृन्द, वीर--रिपु-घाती ।
अटके रजनीचर--चोर, बधिक--उत्पाती ॥
छुपगया छेद घननाद, लखन की छाती ।
झट लेपहुँचे प्रभु पास, सुदत्त--सँगाती ॥
अति कष्ट पड़े पर धीर, न हिम्मत हारो ।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ५१ ॥

बिनचेत अनुज को देख, राम घबराये ।
हनुमान द्रोण-गिरि-जन्य, महोषधि लाये ॥
कर शीघ्र शल्य-प्रतिकार, सुखेन सिधाये ।
उठ बैठे लखन, सशोक, समस्त सिहाये ॥
बन पौरुष--पङ्कज--भृङ्ग, सुजन गुंजारो ।
पढ़ राम--चरित्र--पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ५२ ॥

उठ कुम्भकर्ण-रण-धीर, अड़ा मतवाला ।
समझे कपि, भालु सजीव, महीधर--काला ॥
रघुनायक ने इषु मार, व्यग्र कर डाला ।
तन खण्ड खण्ड कर प्राण,-प्रपञ्च निकाला ॥
प्रतिभट-पिशाच के अङ्ग, अवश्य बिदारो ।
पढ़ राम--चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ५३ ॥

मचगया घना घमसान, हुआ अँधियारा ।
भट कटें कटक में युद्ध, प्रचण्ड पसारा ॥
तड़पें तन, उगलें लोथ, रुधिर की धारा ।
घननाद अभय-सौमित्र, सुभट ने मारा ॥
यति-वीर-महाव्रत-शील, विपत्ति विड़ारो ।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ५४ ॥

उजड़े घर, सैन समेत, कुटुम्ब कटाया ।
अब जनक-सुता का चोर, समर में आया ॥
रच रच माया बल-दर्प, सदम्भ दिखाया ।
पर बचा न रावण राम,-विजय ने खाया ॥
खल-दल को मार मिटाय, कु-भार उतारो ।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ५५ ॥

कर सकल हेम-प्रासाद, नगर के रीते ।
कट मरे निशाचर वीर, भालु, कपि जीते ॥
रघुवर बोले दिन आज, विरह के बीते ।
अबतो मिल मङ्गल मान, सुवदना सीते ! ॥
बिछुड़ी वनिता पर प्रेम, सुरुचि संचारो ।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ५६ ॥

विधवा-दल का परिताप, विलाप मिटाया ।
अवनीश बिभीषण वंश,-वरिष्ठ बनाया ॥
सिय से रघुनाथ सबन्धु, मिले सुख पाया ।
दिन फिरे अवध के ध्यान, भरत का आया ॥
निज जन्म भूमि पर प्रेम, अवश्य प्रसारो ।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ५७ ॥

फिर पुष्पक पै कपि भालु, प्रधान चढ़ाये ।
चढ़ लखन जानकी राम, चले घर आये ॥
गुरु, मात, बन्धु-प्रिय, दास, प्रजा-जन पाये ।
सब ने मिल भेंट समोद, शम्भु-गुण गाये ॥
बिछुड़ो ! कर मेल मिलाप, प्रवास बिसारो ।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ५८ ॥

सिय, राम, भरत, सौमित्र, मिले अनुरागे ।
पट, भूषण सुन्दर धार, वन्य-व्रत त्यागे ॥
उमगे सुख-भोग-बिलास, विघ्न, भय भागे ।
अपनाय अभ्युदय-भव्य, राज-गुण जागे ॥
चमको अब छार छुड़ाय, ज्वलित अङ्गारो ।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ५९ ॥

अभिमंत्रित मंगल-मूल, साज सब साजे ।
प्रभुतासन पै रघुनाथ, सशक्ति विराजे ॥
घर घर गायन, वादित्र, मनोहर बाजे ।
सुनते ही जय जय कार, राज-गज गाजे ॥
बनिये शंकर इस भाँति-, धर्म-अवतारो ।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो ॥ ६० ॥

ऋतु-राज-रहस्य १११

(दोहा)

छूटे शीत, निदाघ लों, जिस की छवि के छोर ।
फूल रहा देखो सखा, उस बसन्त की ओर ॥ १ ॥

वसन्त–विकाश ११२

(गीत)

छवि–ऋतु–राज कीरे,
अपनी ओर निहार, निहारो ॥ टेक ॥

घटती हैं घड़ियां रजनी की, बढ़ता है दिन-मान ।
सकुचेगी इस भाँति अविद्या, विकसेगा गुरु-ज्ञान ॥
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

कर पतझाड़ चढ़ी पेड़ों पै, हरियाली भरपूर ।
यों अवनति को उन्नति द्वारा, अब तो करदो दूर ॥
छ० ऋ० की० अ० ओर नि० निहारो ॥

छदन बेलि, वृक्षों पर छाये, रहे अपर्ण करील ।
मन्द सुअवसर पाते तोभी, बने न वैभव-शील ॥
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

उलहे गुल्म, लता, तरु सारे, अंकुर कोमल-काय ।
जैसे न्याय-परायण--नृप की, प्रजा बढ़े सुख पाय ॥
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

हार हरे, कर दिये वसन्ती, सरसों ने सब खेत ।
मानो सुमति मिली सम्पति से, धर्म, सुकर्म समेत ॥
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

मधुर–रसीले फल देने को, बौरे सघन–रसाल ।
जैसे सकल सुलक्षण, धारें, होनहार कुल-पाल ॥
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

बिगड़ फुलबुन्दे कदम्बके, कलियानी कचनार ।
बन बैठे धन हीन धनी यों, निर्धन कमलाधार ॥
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

धौरे सुमन सुगन्धित धारें, सदल सेवती, सेब ।
मानो शुद्ध-सुयश दर साते, हिलमिल देवी, देव ॥
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

गेंदा खिले कुसुम केसरिया, पाटल-पुष्प अनूप ।
किम्वा सहित समाज बिराजे, बुध-मंत्री, गुरु-भूप ॥
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

फूल रहे सर में रस बाँटें, उपकारी-अरविन्द ।
दान पाय गुण-गण गाते हैं, याचक-बृन्द-मिलिन्द ॥
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

फूले मसि-मिश्रित-अरुणारे, किंशुक सौरभ हीन ।
विचरें यथा असाधु रँगीले, ज्ञानशून्य तन-पीन ॥
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

अरुण फूल फूले सेमर के, प्रकट कोश-गम्भीर ।
क्या लोहित-मणि की कुलियों में, माँगरहे मधु वीर ?॥
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

बढ़ बढ़ गण सत्यानाशी के—विकसे कराटक धार ।
किम्बा विशद-वेष-कटु-भाषी, वञ्चक करें विहार ॥
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

सुमन, मंजरी बरसाते हैं, बन, बीहड़, आराम ।
क्या शर मार मार रसिकोंसे, अटक रहा है काम ?॥
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

पुष्प-पराग, सुगन्ध उड़ाता, शीतल-मन्द-समीर ।
यों सब को सुख पहुँचाता है, धर्म---धुरन्धर---धीर ॥
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

कोकिल कूँजें, मधुकर गूँजें, बोलें विविध बिहंग ।
क्या मिल रहे साम-गायनसे, मुरली, वेणु, मृदंग ? ॥
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥
त्याग विरोध मिले समतासे, सरदी और निदाघ ।
बैर बिसार तपोवन में ज्यों, साथ रहैं मृग, बाघ ॥
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥
रसिक-शत्रु वासन्ती-विधि का, करते हैं अपमान ।
ज्यों रस भाव भरी कविता को, सुनते नहीं अजान ॥
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥
भर देता है भारत भर में, मधु आनन्द, उमङ्ग ।
भङ्ग पिला कर शंकर का भी, करडाला व्रत-भङ्ग ॥
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥१॥

पञ्च देव ११३

(दोहा)

इष्ट-देव-संसार का, शङ्कर—जगदाधार ।
शिष्ट-देव-माता, पिता, गुरु, अभ्यागत चार ॥१॥

देवचतुष्टय ११४

(गीत)

वैदिक बिद्वान बताते हैं,
साकार देवता चार ॥टेक॥
माता ने जन कर पाला है, कौन पिता सा रखवाला है,
सेवक ! सेवा कर दोनों की, सविनय बारम्बार ।
वै० बि० ब० सा० देवता चार ॥

जिस ने चारों वेद पढ़ाये, शुद्धाचार विचार बढ़ाये,
उस विद्या-धारी सद्गुरको, पूज! प्रमाद बिसार ॥
वै० वि० ब० सा० देवता चार ॥

खोटी गैल न जो अपनावे, सब को सीधा पन्थ बतावे,
ऐसे धर्माधार अतिथि का, कर स्वागत—सत्कार ॥
वै० वि० ब० सा० देवता चार ॥

देव महाराजादि अन्य हैं, न्याय-शील श्रद्धेय धन्य हैं,
शंकर मिला उक्त चारों को, सर्वोपरि—अधिकार ॥
वै० वि० ब० सा० देवता चार ॥१॥

प्रातरुत्थान ११५

(दोहा)

सोते रहैं न जागते, जो जन पिछली रात ।
बनते हैं वे आलसी, उत्त न बुध विख्यात ॥१॥

+ब्रह्मचारिणी–बालिका ११६

(गीत)

वह ऊवी रवि की लालिमा,
जगादे इसे मैया ॥ टेक ॥

पीली! फटते ही उठ बैठे, सारे वैदिक भैया ।
अबलों देख पड़ा सोता है, तेरा लाल कन्हैया ॥
(री) जगादे इसे मैया ॥

ब्रह्म-काल में गुरु से आगे, भागे छोड़ बिछैया ।
छुट्टी पाकर शौच क्रिया से, न्हा धो चुके न्हवैया ॥
(री) जगादे इसे मैया ॥

+ एक लड़की छोटे भाई को सोता देखकर माता से कहती है ।

बाल ब्रह्मचारी व्रत धारी, बैठे डाल चटैया ।
सन्ध्या ध्यान होम करते हैं, पांचो याग करैगा ॥
(री) जगादे इसे मैया ॥
कर व्यायाम चले संथा को, बारे वेद पढ़ैया ।
हे शंकर! आलस्य न डोवे, धर्म, कर्म की नैया ॥
(री) जगादे इसे मैया ॥१॥

विबाह पद्धति ११७

(दोहा)

धार तेज तारुण्य का, एक नारि नर एक ।
दो दो दम्पति प्रेम से, प्रकटें ग्रही अनेक ॥१॥

वैदिक-विवाह ११८

(गीत)

उमगी महिमा उत्कर्ष की,
सुख-मूल-बिवाह किया है ॥ टेक ॥
देखो नामी घर का बर है, विज्ञ ब्रह्मचारी सुन्दर है,
आयु पचीसी से ऊपर है, दुलहिन षोडश बर्ष की ।
शुभ-योग मिलाय लिया है ।
सुख-मूल-विवाह किया है ॥
मण्डप के भीतर बैठे हैं, सप्तपदी ये कर बैठे हैं,
चारों भामर भर बैठे हैं, पाय परम-निधि हर्ष की ।
हिलमिल पीयूष पिया है ।
सुख-मूल-विवाह किया है ॥

बैठे सभ्य-सुबोध बराती, पूजें प्रेम पसार घराती,
नारि सीठने एक न गाती, समुचित भारतवर्ष की।
विधि का उपदेश दिया है।
सुख–मूल विवाह किया है ॥
रण्डी, भाँड, कुसंग नहीं है, आमिष, हाला, भंग नहीं है,
गुण्डों का हुरदंग नहीं है, कुमति-अधम-आमर्ष की ॥
तज शंकर कर्म जिया है।
सुख–मूल विवाह किया है ॥ १ ॥

अवनति से उन्नति ११९

(दोहा)

गिरजाता है गर्त्त में, जब जो उन्नत देश।
ऊँचा करते हैं उसे, तब ऊँचे उपदेश ॥१॥

प्रचण्ड–प्रण–पंचदशी १२०

(शुद्धगात्मक-मिलिन्दपाद)

दया का दान देने को, जिन्हों ने जन्म धारे हैं।
न ब्रह्मानन्द से न्यारे, न विद्या ने बिसारे हैं ॥
जिन्हों ने योग से सारे, खरे खोटे निहारे हैं।
प्रतापी देश के प्यारे, विदेशों के दुलारे हैं ॥
हमैं अन्धेर–धारा से, भला वे क्यों न तारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे ॥१॥

भलाई को न भूलेंगे, सुशिक्षा को न छोड़ेंगे।
हठीले प्राण खोदेंगे, प्रतिज्ञा को न तोड़ेंगे ॥

प्रजा के और राजा के, गुणों की गांठ जोड़ेंगे।
भिड़ेंगे भेद का भाँडा, धड़ाका मार फोड़ेंगे॥
लड़ेंगे लोभ–लीला के, लुटेरों से न हारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥२॥

जलीले जाति के सारे, मदन्धों को टटोलेंगे।
जनों को सत्य-सत्ता की, तुला से ठीक तोलेंगे॥
बनेंगे न्याय के नेगी, खलों की पोल खोलेंगे।
करेंगे प्रेम की पूजा, रसीले बोल बोलेंगे॥
गपोड़े पागलों के से, समाजों में न मारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥३॥

बनेगी सभ्यता-देवी, बड़ाई देव–दूतों की।
हमारे मेल की मस्ती, मिटावेगी न ऊतों की॥
करेंगे साहसी सेवा, सदाचारी सपूतों की।
घरों में तामसी-पूजा, न होगी प्रेत, भूतों की॥
मतों के मान मारेंगे, कुपन्थों को बिसारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥४॥

अड़ीले अन्ध-विश्वासी, उलूकों को उड़ादेंगे।
अछूती छूतछैगा की, अछोपाई छुड़ादेंगे॥
मरों के साथ जीतों के, जुड़े नाते तुड़ादेंगे।
तरेंगे ज्ञान–गंगा में, अविद्या को बुड़ादेंगे॥
सुधी सद्धर्म धारेंगे, सुकर्मों को उधारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥५॥

धरेंगे ध्यान मेधा का, पढ़ेंगे वेद–चारों को।
प्रमाणों की कसौटीपै, कसेंगे सद्विचारों को॥

लिखेंगे लोक-लीला के, बड़े छोटे विकारों को ।
महा-विज्ञान स्रष्टा का, दिखादेंगे दुलारों को ॥
सुखी सर्वज्ञ-सिद्धों पै, सदा सर्वस्व वारेंगे ।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे ॥६॥

सुशीला बालिकाओं को, लिखावेंगे पढ़ावेंगे ।
न कोरी कर्कशाओं को, वृथा सोना गढ़ावेंगे ॥
प्रवीणा को प्रतिष्ठा के, महाचल पै चढ़ावेंगे ।
सती के सत्य की शोभा, प्रशंसा से बढ़ावेंगे ॥
सुभद्रा-देवियों को यों, दया--दानी दुलारेंगे ।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे ॥७॥

बढ़ेगा मान विज्ञानी, सुवक्ता—ग्रन्थकारों का ।
घटेगा ढोंग पाखंडी, दुराचारी लबारों का ॥
पता दैवज्ञ--देवों में, न पावेगा भरारों का ।
अजानों की चिकित्सा से, न होगा नाश प्यारों का ॥
सुयोगी योग-विद्या के, विचारों को प्रचारेंगे ।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे ॥८॥

कुचाली, चाटुकारों को, न कौड़ी भी ठगावेंगे ।
पराई नारियों से जी, न जीतेजी लगावेंगे ॥
सहेटों में सुलाने को, न रगड़ा को जगावेंगे ।
अनाचारी, असभ्यों के, कुभोगों को भगावेंगे ॥
पुरानी नायिकाजी को, न ग्रन्थों में निहारेंगे ।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे ॥९॥

करेंगे प्यार जीवों पै, न गौओं को कटावेंगे ।
बसा कंगाल-दीनों की, न चिन्ता को चढ़ावेंगे ॥

महा-मारी-प्रचण्डी की, बढ़ी सीमा घटावेंगे ।
कुचाली काल की सारी, कुचालों को हटावेंगे ॥
पड़े दुर्दैव घाती की, न घातों को सहारेंगे ।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे ॥१०॥

फलेगी प्राणदा-खेती, किसानों के कुमारों की ।
बढ़ेगी सम्पदा, पूँजी, खरे दूकानदारों की ॥
बढ़ादेगी कलाकारी, कमाई शिल्पकारों की ।
बड़ाई लोक में होगी, प्रतापी होनहारों की ॥
करेंगे नाम, कामों की, प्रथा प्यारी प्रसारेंगे ।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे ॥११॥

अड़ीले मस्त गुंडों के, अखाड़ों को उखाड़ेंगे ।
ठगों की पेट-पूजा के, बसे खेड़े उजाड़ेंगे ॥
रहैंगे दूर दुष्टों से, कुशीलों को लताड़ेंगे ।
खलों का खोज खोदेंगे, पिशाचों कोपछाड़ेंगे ॥
घिनोनी मोह-माया के, प्रपञ्चों को पजारेंगे ।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे ॥ १२ ॥

सुधी श्रद्धा-सुधा सारे, सुकर्मों को पिलावेंगे ।
करेंगे नाश मिथ्या का, सचाई को जिलावेंगे ॥
मिलापी मेल-माला में, निरालों को मिलावेंगे ॥
न गन्दी गर्व-गाथा से, पहाड़ों को हिलावेंगे ।
"मिलो भाई" सँगाती यों, अछूतों को पुकारेंगे ।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे ॥ १३ ॥

विवेकी ब्रह्म--विद्या की, महत्ता की बखानेंगे ।
बड़ा कूटस्थ अत्ता से, किसीकी भी न मानेंगे ॥

प्रमादी, राज–विद्रोही, जड़ों को नीच जानेंगे ।
ठगी के जाल भोलों के, फँसाने को न तानेंगे ॥
कभी पाखण्ड–पापी के, न पैरों को पखारेंगे ।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे ॥१४॥

बड़ों के मंत्र मानेंगे, प्रसगों को न भूलेंगे ।
कहो क्या ऊँच ऊँचों की, ऊँचाई को न छूलेंगे ॥
बढ़ेंगे प्रेम के पौधे, दया के फूल फूलेंगे ।
भरे आनन्द से चारों, फलों के झाड़ झूलेंगे ॥
सबों को "शंकरानन्दी", अनिष्टों से उबारेंगे ।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे ॥१५॥

महेन्द्र-महिमा १२१

(प्राचीन-सूक्ति)

बालोपि नाव मन्तव्यो, मनुष्य इति भूमिपः ।
महती देवता ह्येषा, नर रूपेण तिष्ठति ॥ १ ॥

महेन्द्र–मङ्गलाष्टक १२२

(रुचिरात्मक-मिलिन्द-पाद)

देख भारती ! भारत-प्रभु का, भारत में अभिषेक हुआ ।
मंगल से मिल मंगल की मा, मंगल एक अनेक हुआ ॥
राज–बेष धर धर्मराज का, श्रीधर धर्म–विवेक हुआ ।
मुकुट किरीटी के किरीट की, समता पाकर एक हुआ ॥
इन्द्रासन पर बैठ इन्द्र ने, इन्द्रप्रस्थ पर प्यार किया ।
प्रभुता पाय जार्ज–पञ्चम ने, सुख-सागर संसार किया ॥१॥

सम्वत्सर वसु राग अङ्क भू, बिक्रमीय अनुकूल हुआ ।
पौष शुभासित पक्ष सप्तमी, मङ्गल मङ्गल-मूल हुआ ॥
दिव्य-राज धानी दुलहिन का, दूर वियोगज-शूल हुआ ।
पतिप्राण आगतपतिका का, दृश्य कल्प तरु-फूल हुआ ॥
मिलने को बासकसज्जा ने, अति सुन्दर शृङ्गार किया ।
प्रभुता पाय जार्ज-पञ्चम ने, सुख-सागर संसार किया ॥२॥

मुक्ता-मणि-मण्डित-मण्डप में, सिद्ध अनुष्ठित काज हुआ ।
राजसूय-मख में महेन्द्र का, मान महोत्सव-राज हुआ ॥
देख महामहिमा महत्व की, मुग्ध महीप-समाज हुआ ।
उमगा परमानन्द प्रजा का, भव्य-अभ्युदय आज हुआ ॥
सजला,सफला,सस्य-श्यामला, बसुधा पै अधिकार किया ।
प्रभुता पाय जार्ज-पञ्चम ने, सुख-सागर संसार किया ॥३॥

अजित, अजातशत्रु,स्वामी के, बल का वृहदुत्कर्ष हुआ ।
राज-भक्ति-भाजन बड़भागी, सेवक—भारतवर्ष हुआ ॥
दर्शक, सैनिक, सम्मेलन में, मग्न अलौकिक हर्ष हुआ ।
जय जय वादनादि शब्दों का, तुमुलोदधि दुर्धर्ष हुआ ॥
तोपों की घन-घोर गरज ने, शुभ स्वागत-सत्कार किया ।
प्रभुता पाय जार्ज-पञ्चम ने, सुख-सागर संसार किया ॥४॥

सुयश-बिभूति महारानी का, पूजन पति के साथ हुआ ।
बिमला-प्रीति,बिशुद्ध-प्रेम का, गौरव उन्नत- माथ हुआ ॥
रक्षक पाय सशक्ति प्रतापी, द्वीप-समूह सनाथ हुआ ।
फूल फूल सब देश फलेंगे, पोषक हित का हाथ हुआ ॥
दान दया से धनकुबेर ने, पुनरुद्धार सुधार किया ।
प्रभुता पाय जार्ज—पञ्चम ने, सुख-सागर संसार किया ॥५॥

दान-विधान विलोक कर्ण के, यश का दूर घमण्ड हुआ ।
उपजा दैशिक-मेल मही पै, खण्डित-बङ्ग अखण्ड हुआ ॥
पदवी, पदक, पुरस्कारों से, शासन-शिशु पौगण्ड हुआ ।
छूट गये अपराधी सब से, भिन्न भयानक-दण्ड हुआ ॥
धन्य धनद ! धन से विद्या का, अधिकाधिक विस्तार किया ।
प्रभुता पाय जार्ज-पञ्चम ने, सुख-सागर संसार किया ॥६॥

पुण्य-प्रकाश प्रजेश-भानु का, भूतल पै भरपूर हुआ ।
रही न रात अराजकता की, अशुभ-अंधेरा दूर हुआ ॥
विद्रोही-छल--बल-बादल के, दल का चकनाचूर हुआ ।
प्रतियोगी पौरुष--कलेश का, कुटिल-योग अक्रूर हुआ ॥
मण्डलीक-नृप तारा-गण को, तैजस तेज प्रसार किया ।
प्रभुता पाय जार्ज--पञ्चम ने, सुख-सागर संसार किया ॥७॥

नीच-विचार निशाचर भागे, भ्रम-तुषार का नाश हुआ ।
कुल अन्धेर-उलूक-अन्ध का, उद्यम हीन हताश हुआ ॥
सामाजिक-सद्गुण कमलों का, श्रीसौरभित विकाश हुआ ।
नीति,न्याय, चकई,चक नाचे, निर्मल-यश-आकाश हुआ ॥
शङ्कर के अनुराग-रङ्ग का, भद्रक भाव प्रचार किया ।
प्रभुता पाय जार्ज-पञ्चम ने, सुख-सागर संसार किया ॥८॥

विमुक्तात्मा-महारानी-विक्टोरिया १२३

(दोहा)

धन्य राज राजेश्वरी, सुयश--जीवनाधार ।
मुक्ति-मंगला से मिली, बन्ध-विभूति बिसार ॥१॥

स्वर्गीय-सम्राट -सप्तम-ऐडवर्ड १२४

(दोहा)

सोंप प्रतापी-पुत्र को, प्रभुता, प्रजा, समाज ।
नायक देवों के बने, ऐडवर्ड—महा राज ॥१॥

वर्त्तमान राजराजेश्वर ५ जार्ज १२५

(दोहा)

मा के अनुगामी बने, एडवर्ड—अमरेश।
पालें भारतवर्ष को, जय श्री जार्ज-प्रजेश ॥१॥

भगवान भारतेश्वर १२६

(गीत)

भारत-जननी के भरतार,
रक्षा हम सब की करते हैं ॥ टेक ॥

श्री, बल, बोध, अखण्ड-प्रताप, साहस, धर्म, सुकर्म-कलाप,
सच्चे, शुभ-गुण-सागर-आप, मन में भूल नहीं भरते हैं।
भा० ज० भ० र० ह० स० करते हैं ॥

नैतिक नियमों के अनुसार, मंगल-मूल-प्रबन्ध पसार,
किस के सिर पै परमोदार, हित का हाथ नहीं धरते हैं ॥
भा० ज० भ० र० ह० स० करते हैं ॥

भिक्षुक, भीरु, सुभट, भूपाल, पण्डित, अबुध, धनी, कंगाल,
हिल मिल काटें सुख से काल, मायिक मार खाय मरते हैं।
भा० ज० भ० र० ह० स० करते हैं ॥

शासन-पद्धति के दृढ़-अङ्ग, उमगे अटल-न्याय के सङ्ग,
शंकर-प्रभुता के सब ढङ्ग, दुर्जन देख देख डरते हैं ॥
भा० ज० भ० र० ह० स० करते हैं ॥ १ ॥

भद्र भावार्थ १२७

(दोहा)

गुरुदेवों का दास है, असुरों का उपहास।
उपदेशों का बास है, भणित भद्र उद्भास ॥ १ ॥

—०* इति *०—

ओ३म्

अनुराग-रत्न

* मन्दोद्गार *

(विनय बन्दना)

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेररावणः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ।

ऋ० १-३-१०-१५-

(श्रद्धा-सूक्ति)

मुक्तिप्रदं सुदृढ़-बन्धनतो अमाणां,
साक्षान्निजात्म सुखदञ्च गुरुं कृपालुं ।
श्रद्धायुतस्य जनि--मृत्युहरं सु वाक्यै,
बन्दे मुदा परमया करुणा स्पदञ्चै ॥ १ ॥

भारत की मन्द--दशा १

(दोहा)

भूल रहे जो जालिया, शङ्कर का उपदेश ।
क्या उन के अन्धेर से, सुधर सकेगा देश ॥ १ ॥

भूत काल की कथा २

(मन्दाक्रान्ता-बृत्त)

स्वामीजी की, जब न सुखदा, घोषणा होरहीथी ।
मिथ्या-माया, कपट छल की, बेदना बोरहीथी ॥

भारी-बोझे, अमित-भय के, भीरुता ढोरहीथी ।
बोलो भाई, तब न किस की, सभ्यता सोरहीथी ॥ १ ॥

मेधा--देवी, विकल जब थी, भारती रोरहीथी ।
गोरक्षा की, वधिक बल की, क्रूरता खोरहीथी ॥
कंगाली के, मलिन-मुख को, श्री नहीं धोरहीथी ।
बोलो भाई, तब न किस की, सभ्यता सोरहीथी ॥ २ ॥

आर्त्त-नाद ३

(दोहा)

डूबे शोक-समुद्र में, भारत के सुख-भोग ।
हा! निष्ठुर-दुर्दैव ने, लूट लिये हमलोग ॥ १ ॥

देश-भक्तों का विलाप ४

(सुन्दरी-सवैया)

हम दीन दरिद्र-हुताशन में, दिन रात पड़े दहते रहते हैं।
बिन मेल विरोध-महा-नद में, मन वोहित से बहते रहते हैं ॥
कविशंकर! काल-कुशासन की, फटकार-कड़ी सहते रहते हैं।
पर भारत के गत-गौरव की, अनुभूत-कथा कहते रहते हैं ॥१॥

शोक-संवाद ५

(दोहा)

ऊँची पदवी से गिरा, गौरव रहा न सङ्ग ।
प्यारे भारतवर्ष का, हाय! हुआ रस भङ्ग ॥ १ ॥

सम्मुखोद्गार ६

(त्रोटकात्मक-मिलिन्दपाद)

प्रभु शङ्कर! तू यदि शङ्कर है। फिर क्यों विपरीत भयङ्कर है ॥
करतार-उदार सुधार इसे। कर प्यार निहार न मार इसे ॥

मृगराज कहाय कुरङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥ २ ॥

धरणीश, धनेश, जनेश रहा । अनुकूल सदा अखिलेश रहा ॥
सब से बढ़िया, घटिया कब था । इस भांति बड़ा जब था तब था ॥
अब तो यह नङ्गमनङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥ २ ॥

जिस ने सुविचार विकाश किया। रच ग्रन्थ-समूह प्रकाश किया ॥
कवि-नायक, पण्डित-राज बना। वह अज्ञ, अशिक्षित आज बना ॥
बिन पक्ष विवेक-विहङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥ ३ ॥

अबलों न कहीं वह देश मिला । इस का न जिसे उपदेश मिला ॥
उस गौरव के गुण अस्त हुये । गुरु के गुरु शिष्य समस्त हुये ॥
कितना प्रतिकूल प्रसङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥ ४ ॥

जिस के जन-रक्षक शस्त्र रहे । उस के कर हाय! निरस्त्र रहे ॥
रण-जीत शरासन टूटगया । इषु-वर्ग-यशोधर छूट गया ॥
रिपु-रक्त-निमग्न निषङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥ ५ ॥

बिगड़ी गति वैदिक-धर्म बिना। सुख-हीन हुआ शुभ-कर्म बिना ॥
हठ ने जड़धी अविकाश किया। फिर आलस नें बल नाश किया ॥
हरिचन्दन हाय! पतङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥ ६ ॥

मिल मोह-महा-तम छाय रहा । लग लोभ कुचाल चलाय रहा ॥
मद-मन्द कुदृश्य दिखायरहा । कटुभाषण क्रोध सिखाय रहा ॥

नय-नाशक नीच अनङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥७॥

घनघोर-अमंगल गाज रहा । भरपूर विरोध विराज रहा ॥
घर घेर दरिद्र दहाड़ रहा । उर शोक-महासुर फाड़ रहा ॥
रिपु-रूप कराल-कुसङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥८॥

मद पान करे न तजे पल को । अपनाय रहा खल-मण्डल को ॥
पग पूज कलङ्क-विभीषण के । अनुराग-रँगे गणिका-गण के ॥
दृग-दीपक देख पतङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥ ९ ॥

कुल-भाषण को अनखाय सुने । पर–शब्द-समूह सुनाय सुने ॥
जिन को गुरु मान मनाय रहा । उनकी धज आप बनाय रहा ॥
पर श्यामल से न सुरङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥ १० ॥

अनरीति कटा कट काट रही । पशु-पद्धति शोणित चाट रही ॥
पल खाय अपव्यय खेल रहा । ऋण-ऋषड़ खाल उचेल रहा ॥
ससके सब घायल अङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥ ११ ॥

बिन शक्ति समृद्धि-सुधा न रही । अधिकार गया बसुधा न रही ॥
बल साहस हीन हताश हुआ । कुछ भी न रहा सब नाश हुआ ॥
रजनीश प्रताप–पतङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥ १२ ॥

चिर सञ्चित वैभव नष्ट हुआ । उर-दाहक-दारुण-कष्ट हुआ ॥
सुख बास न भोग-विलास नहीं । उपबास करे धन पास नहीं ॥

बिगड़ा सब ढङ्ग कुढङ्ग हुआ ।
वस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥ १३ ॥

सब ठौर बड़े ब्यवहार नहीं । फिर शिल्प-कला पर प्यार नहीं ॥
कुछ दीन किसान कमाय रहे । हलका हलका फल पाय रहे ॥
उन को कर–भार भुजङ्ग हुआ ।
वस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥ १४ ॥

कस पेट अकिञ्चन सोय रहे । बिन भोजन बालक रोय रहे ॥
चिथड़े तक भी न रहे तन पै । धिक धूलि पड़े इस जीवन पै ॥
अवलोक अमङ्गल ढङ्ग हुआ ।
वस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥ १५ ॥

मत-भेद भयानक-पाप रहा । बिन प्रेम न मेल-मिलाप रहा ॥
अभिमान अधोमुख ठेल रहा । अधमाधम ढोंग ढकेल रहा ॥
सुख-जीवन का मग तङ्ग हुआ ॥
वस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥ १६ ॥

मत, पन्थ असंख्य असार बने । गुरु लोलुप, लराठ, लबार बने ॥
शठ सिद्ध कुधी कवि-राज बने । अनमेल अनेक समाज बने ॥
इस हुल्लड़ का हुरदङ्ग हुआ ।
वस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥ १७ ॥

सरके विधि ! वेद रसातल को । सिर धार अनर्थ-महाचल को ॥
अब दर्शन--रूप न दर्शन हैं । नव–तंत्र प्रमाद--निदर्शन हैं ॥
बकवाद विचित्र-षडङ्ग हुआ ।
वस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥ १८ ॥

अब सिद्धमनोरथ-सिद्ध नहीं । मुनि-मुक्त-प्रवीण-प्रसिद्ध नहीं ॥
अविकल्प अनुष्ठित-योग नहीं । विधि-मूलक-मंत्र–प्रयोग नहीं ॥

फल संयम का शश-शृङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥ १९ ॥
अवधेश-धनुर्धर-राम नहीं । ब्रज-नायक-श्री घनश्याम नहीं ॥
अब कौन पुकार सुने इस की । परमाकुल गैल गहै किस की ॥
तड़पै मृग-तोय–तरङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥ २० ॥

हमारा अधःपतन ७

(दोहा)

शङ्कर से न्यारे रहैं, वैदिक-धर्म बिसार ।
होड़ी होड़ा हम गिरे, पाप प्रमाद पसार ॥१॥

(कलाधरात्मक-मिलिन्दपाद)

प्रभु-शङ्कर मोह-शोक हारी । यम–रुद्र त्रिशूल–शक्ति धारी ॥
इक देख ! दयालु,न्यायकारी । गत-गौरव दुर्दशा हमारी ॥
उपताप समीप आरहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥१॥
जिस को सब देश जानते थे । अपना सिरमौर मानते थे ॥
जिस ने जग जीत मान पाया । अगुआ नव-खण्ड का कहाया ॥
उस भारत को लजा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥२॥
पहला युग पुण्य-कर्म का था । सुविचार प्रचार धर्म का था ॥
जिस के यश की प्रतीक पाई । हरिचन्द–नरेश की सचाई ॥
अब सूम ठगी सिखा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥३॥

उपजा युग दूसरा प्रतापी । प्रकटे व्रत-शील और पापी ।।
जिस की सुप्रसिद्ध रीति जानी । समझी रघुनाथ की कहानी ।।

अब रावण जी जला रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ।।४।।

कर द्वापर कृष्ण की बड़ाई । रच भेद भिड़ा गया लड़ाई ।।
अपना बल आप ही घटाया । छल का फल सर्व-नाश पाया ।।
अबलों कुल मार खा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ।।५।।

जब से कलि-काल कोप आया । तब से भरपूर पाप छाया ।।
कुल-कण्टक, प्राण ले रहे हैं । ठग दारुण-दुःख दे रहे हैं ।।
जड़, कर्म भले भुला रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ।।६।।

मुनि-राज मिलें न सिद्ध-योगी । अवनीश रहे न राज-भोगी ।।
सब उद्यम खो गये हमारे । शुभ-साधन सो गये हमारे ।।
खल खेल बुरे खिला रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ।।७।।

सुविचार, विवेक, धर्म-निष्ठा । प्रण-पालन प्रेम की प्रतिष्ठा ।।
बल, वित्त, सुधार, सत्य-सत्ता । सब को विष दे मरी महत्ता ।।
मति-हीन, हंसी करा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ।।८।।

तज वैदिक-धर्म-धीरता को । भटकें भट विश्व-वीरता को ।।
निधि निर्मल-न्याय की न भावे । सुविधा न सुधार की सुहावे ।।
अनभिज्ञ सुधी कहा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ।।९।।

अनमोल असंख्य ग्रन्थ खोये । बन मायिक वेद भी बिगोये ॥
इतिहास मिलें नहीं पुराने । अनुकूल नवीन तंत्र माने ॥
हठ-बाद हठी बना रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥१०॥

व्रत-शील सुबोध हैं न शर्म्मा । रण रोप लड़ें न वीर वर्म्मा ॥
धन-राशि न गुप्त गाढ़ते हैं । गुरु-भाव न दास काढ़ते हैं ॥
चतुराश्रम ढोंग ढा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥११॥

निगमागम छान बीन छोड़े । उपदेश बना दिये गपोड़े ॥
अब जो विधि जाति में भरी है । उसकी जड़ श्री बिरादरी है ॥
यश उद्धत-पञ्च पा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥१२॥

भ्रम-भेद भरी पवित्रता है । छल से भरपूर मित्रता है ॥
मन-गेह घने घमण्ड का है । डर केवल राज-दण्ड का है ॥
मत पन्थ नये नचा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥१३॥

मत-भेद पसार फूट फैली । बिन मेल रही न एक शैली ॥
सुख-भोग भगाय रोग जागे । पकड़े अघ-ओघ ने अभागे ॥
दिन संकट के बिता रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥१४॥

उपदेशक लोग लूटते हैं । कटु-भाषण-बाण छूटते हैं ॥
हित-साधन हा ! न सूझते हैं । जड़ जाल पसार जूझते हैं ॥
अड़ ऊत अड़े अड़ा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥१५॥

कचलम्पट पेट के पुजारी । विषयी बन बाल-ब्रह्मचारी ॥
मुख से सब "सोऽहमस्मि" बोलें । तन धार अनेक ब्रह्म डोलें ॥

जड़ जन्म वृथा बिता रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥१६॥

वह योग समाधि-सिद्धि धारी । वह जीवन-वेद रोगहारी ॥
समझें जिन के न अङ्ग पूरे । अब साधु, गदारि हैं अधूरे ॥
रच दम्भ दशा दुरा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥१७॥

बिचरें बन ज्योतिषी भरारे । चमकें भ्रम-जाल–जन्य-तारे ॥
उतरे ग्रह वेध की नली में । अटके अब जन्म-कुराडली में ॥
दिन पांच, खरे बता रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥१८॥

कवि राजसमाज में न बोलें । धनहीन सुधी उदास डोलें ॥
गुण--ग्राहक कल्पवृत्त सूखे । भटकें भट, शिल्पकार भूखे ॥
शठ आदर से अघा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥१९॥

समझे तन–भार भूषणों को । दमके दमकाय दूषणों को ॥
कविता रस-भाव तोल त्यागे । हलकाय कहीं न और आगे ॥
गढ़ तुकड़ गीत गा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥२०॥

बिरले ध्रुव-धर्म धारते हैं । शुभ-कर्म नहीं बिसारते हैं ॥
तरसें वह वीर रोटियों को । चिथड़े न मिलें लँगोटियों को ॥
कुलबोर–प्रथा पुजा रहे हैं
उलटे हम हाय! जा रहे हैं ॥२१॥

बल-हीन अबोध बाल बच्चे । करतूत विचार के न सच्चे ॥
डरपोक सुधार क्या करेंगे । लघु–जीवन भोगते मरेंगे ॥
घटिया कुनबे बढ़ा रहे हैं ।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं ॥२२॥

वल-व्याकरणीय वाद को है। फिर न्याय नृसिंह-नाद को है ॥
अभिमान मढ़ी उपाधि पाई। अब शेष रही न पण्डिताई ॥
गुण-गौरव यों गमा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं ॥२३॥

बुध शिक्षक दो प्रकार के हैं। अवतार परोपकार के हैं ॥
उपहार करे प्रदान शिक्षा। बस, वेतन और धर्म-भिक्षा ॥
भर पेट भला मना रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं ॥२४॥

समझे, पढ़ अङ्क, बीज, रेखा। फल भिन्न सिलेट से न देखा ॥
क्षितिगोल, खगोल, जानते हैं। पर शब्द-प्रमाण मानते हैं ॥
बुध-बेष बृथा बना रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं ॥२५॥

बहु ग्रन्थ रटे न पाठ छोड़े। गटके गुरु--ज्ञान के गपोड़े ॥
अधबैस उमंग में गमाई। पर उत्तम नौकरी न पाई ॥
जड़ उद्यम की जमा रहे हैं।
उलटे हम हाय जा रहे हैं ॥ २६ ॥

ठमके सब ठौर राज-भाषा। थिरके न थकी समाज-भाषा ॥
लिपि बैल-मुतान सी खरी है। पर पोच प्रशस्त-नागरी है ॥
मिल मिस्टर यों मिटा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं ॥२७॥

लिपि लाल-प्रिया महाजनी है। जिस की दर देश में घनी है ॥
प्रिय पाठक! वर्ण दो बना लो। पढ़ चून, चुना, चुनी, चना लो ॥
मुड़िया मति की मुड़ा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं ॥२८॥

ग्रह, योग दबोच डांटते हैं। जड़-तीरथ मुक्ति बाँटते हैं ॥
बलि, पिण्ड न भूत, प्रेत छोड़ें। सुर सार सुभक्ति का निचोड़ें ॥

डर कल्पित भी डरा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥ २९ ॥

अति उन्नत राज–कर्मचारी। जिन के कर बाग है हमारी॥
भरपूर पगार पा रहे हैं। फिर भी कुछ घूंस खा रहे हैं॥
पद का मद यों जता रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥ ३० ॥

धमकें धरमार के धड़ा के। अभियोग लड़ा रहे लड़ाके॥
यदि वेतस न्याय का न देगा। किस को फिर कौन जीत लेगा॥
सुन कोर्ट–कथा सुना रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥ ३१ ॥

मृदु नोटिस काम दे रहे हैं। कटु-सम्पुट दाम दे रहे हैं॥
ठगिया पन से न छूटते हैं। पर–द्रव्य लबार लूटते हैं॥
करुणामृत यों बहा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥ ३२ ॥

विधवा रुचि रोक रोरही हैं। कुलटा कुल-कानि खो रही हैं॥
कर कौतुक गर्भ धारती हैं। जन बालक हाय! मारती हैं॥
द्विज धर्म–ध्वजा उड़ा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥ ३३ ॥

पशु--पोच गले कटा रहे हैं। खल गोकुल को घटा रहे हैं॥
दधि, माखन, दूध, घी बिसारे। ब्रज–राज कहां गये हमारे॥
बिन बुद्ध कुधी दबा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥ ३४ ॥

जल का कर, बीज, ब्याज पोता। भुगताय सकें न भूमि जोता॥
खलियान अनेक डालते हैं। पर, केवल पेट पालते हैं॥
घुड़छान किसान छा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥ ३५ ॥

सब देश कबाड़ दे रहे हैं। धन और अनाज ले रहे हैं ॥
क्षति का लिखते न लोग लेखा। परखे बिन क्या करें परेखा ॥
सुख साज सजे सजा रहे हैं।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥ ३६ ॥

धरणीश, धनी, समृद्धि-शाली। अलमस्त पड़े समस्त ठाली ॥
जड़ जंगम—जीव नाम के हैं। विषयी न विशेष काम के हैं ॥
गढ़ गौरव का खसा रहे हैं।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥ ३७ ॥

कुल-कंटक दास काम के हैं। नर कायर वीर बाम के हैं ॥
जब जम्बुक—यूथ से डरेंगे। तब सिंह कहाय क्या करेंगे ॥
डरपोक डटे डरा रहे हैं।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥ ३८ ॥

धरणी, धन, धाम देचुके हैं। भरपूर दरिद्र ले चुके हैं ॥
कब मङ्गल से मिलाप होगा ?। जब दूर प्रमाद-पाप होगा ॥
अबतो कुविलास भा रहे हैं।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥ ३९ ॥

भर पेट कड़ा कुसीद खाना। परतंत्र—समूह को सताना ॥
इस को कुल-धर्म जान ते हैं। यश उन्नति का बखान ते हैं ॥
धन धींग-धनी कमा रहे हैं।
उलटे हम ! हाय जा रहे हैं ॥ ४० ॥

सुनलो ! भय त्याग भीरु-लोगो। सुख-भोग सदा समोद भोगो ॥
पकड़ो विधि माल-मस्त ऐसी। किस की अन रीति रीति कैसी ॥
इस भांति सखा सिखा रहे हैं ॥
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥ ४१ ॥

गरिमा, जयचन्द ने कढ़ाई। महिमा महमूद की चढ़ाई ॥
कालिमा कुरआन का पढ़ाया। कुनबा इसलाम ने बढ़ाया ॥

शठ सिख, शिखा कटा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥ ४२॥

कुल-धर्म कुलीन खो चुके हैं। मक़बूल-मुराद हो चुके हैं॥
भ्रम-भाजन भक्त भूल के हैं। न मुरीद खुदा-रसूल के हैं॥
इलहाम-नबी लुभा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥ ४३॥

गुरु-गौरशरीर, शिष्य काले। बन मिश्रित मुक्ति के मसाले॥
कर प्यार हमें सुधारते हैं। प्रभु-गाड-कुमार तारते हैं॥
सर-नेटिव त्राण पा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥ ४४

चढ़ प्लेग-पिशाच ने पछाड़े। घर दुष्ट-दुकाल ने उजाड़े॥
पुर, पत्तन देख देख रीते। मरने पर हैं प्रसन्न जीते॥
कुल कष्ट कड़े उठा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥ ४५॥

सब का अब सर्व-मेध होगा। विधि का न कभी निषेध होगा॥
बिगड़े न बनी, बनी सरा हैं। परतन्त्र, स्वतन्त्रता न चाहैं॥
ढप ढाड़स के बजा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥ ४६॥

लघु, लोलुप, लालची बड़े हैं। सब दुर्गति-गाढ़ में पड़े हैं॥
विधि! क्या अब और भी गिरेंगे। अथवा दिन वे गये फिरेंगे॥
सुख-हीन जिन्हे बुला रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥ ४७॥

कुछ लोग भला विचारते हैं। जुड़ जाति-सभा सुधारते हैं॥
अकड़ें कर गर्म, नर्म बातें। गरजें गण मार मार लातें॥
घर फूंक कुआ खुदा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥ ४८॥

प्रभु-पञ्चम-जार्ज--पूज्य-प्यारे । सिरमौर-प्रजेश हैं हमारे ॥
कर प्रेम-पवित्र पालते हैं । सब के परिताप टालते हैं ॥
मग उन्नति का सुझा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥ ४९ ॥
अनुभूत अनेक भाव जाने । कविता मिस बुद्धि ने बखाने ॥
यदि सिद्ध--सरस्वती रहेगी । तब तो कुछ और भी कहेगी ॥
भ्रम भारत को भ्रमा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥ ५० ॥

अन्योक्ति से उपालम्भ ८

(दोहा)

रोके तेज दिनेश का, रे ! शशि लघुता लाद ।
जैसे ढके महेश को, अन्ध अनीश्वर--वाद ॥१॥

सूर्य ग्रहण पर अन्योक्ति ९

(रुचिरात्मक-राजगीत)

रे ! रजनीश निरङ्कुश तू ने, दिननायक का ग्रास किया ।
नेक न धूप रही धरणी पै, घोर तिमिर ने बास किया ॥
जिस को पाय चमकता था तू, अधम ! उसी को रोक रहा ।
धिक ! पापिष्ठ कृतघ्न कलङ्की, तेज त्याग तम पास किया ॥
मन्द हुआ सुन्दर-मुख तेरा, छिटकी छवि तारा-गण की ।
अपने आप जाति में अपना, क्यों इतना उपहास किया ॥
जुगनू जाग उठे जङ्गल में, दिये नगर में जलवाये ।
मूँद महा-महिमा महान की, अणु का तुच्छ-विकास किया ॥

मङ्गल मान निशाचर सारे, चरते और विचरते हैं।
दिन को रूप दिया रजनी का, देव-समाज उदास किया ॥
उष्णा-प्रभा बिन बन-पुष्पों से, सार सुगन्ध न कढ़ते हैं।
रोक चाल नैसर्गिक-विधि की, दिव्य-हवन का ह्रास किया ॥
चकित--चकोर चाह के चेरे, चिनगी चुगते फिरते हैं।
मुख, पग, पंख, जलाने वाला, ज्वलित चन्द्रिकाभास किया ॥
श्वान, शृगाल, उलूक पुकारे, सकुचे कंज, कुमोद खिले।
जोड़ तोड़ चकई, चकवों के, खण्डित प्रेम-बिलास किया ॥
दिन में चुगने वालीं चिड़ियां, हा ! अब कहीं न उड़ती हैं।
सब के उद्यम हरने वाला, सिद्ध तामसिक-त्रास किया ॥
नाम सुधाकर है पर तेरी, लघुता विष बरसाती है।
बिरहानल को भड़काने का, अतिनिन्दित अभ्यास किया ॥
बढ़ बढ़ कर पूरा होता है, घटता घटता छुपता है।
यों उन्नति, अवनति के द्वारा, पक्ष—भेद प्रतिमास किया ॥
तेरी आड़ हटाकर निकली, कोर प्रचण्ड—प्रभाकर की।
फिर दिन का दिन होजावेगा, हट ! क्यों वृथा प्रयास किया ॥
दिव्य उजाला देकर तुझ को, परसों फिर चमकावेगा।
कहदे कब सविता स्वामी ने, श्रीहत अपना दास किया ॥
शङ्कर के मस्तक पर तेरा, अविचल—बास बताते हैं।
पौराणिक-पुरुषों ने भ्रम से, अटल अन्ध—विश्वास किया ॥

अरण्यरोदन १०

(दोहा)

रोते फिरो अरण्य में, विनय सुनेगा कौन।
शङ्कर—दीनानाथ का, ध्यान धरो धर मौन ॥१॥

(शिखरिणी—षट्क)

अभागे जीते हैं, पुरुष बड़भागी मरगये ।
भरे भी रीते हैं, घर नगर सूने करगये ॥
प्रतिष्ठा खोने को, पतित-कुल हा! जीवन धरे ।
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शङ्कर करे ॥१॥

कुचालों ने मारे, मनुज मतवाले कर दिये ।
कुपन्थों में सारे, विकट कटु-भाषी भर दिये ॥
हठीले होने को, हठ न अगुओं की मति हरे ।
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शङ्कर करे ॥२॥

दुराचारी दण्डी, जटिल जड़ मुण्डे मुनि घने ।
प्रमादी पाखण्डी, अबुध-गण गुण्डे गुरु बने ॥
अविद्या ढोने को, विषय-रस का रेवड़ चरे ।
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शङ्कर करे ॥३॥

विरोधी राजाके, छल कर प्रजा का धन हरें ।
घिनोने पापों से, वधिक नर-घाती कब डरें ॥
मलों के धोनेको, सुकृत-घन पुण्योदक धरे ।
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शङ्कर करे ॥४॥

क्षुधा हत्यारी ने, उरग--इव नारी नर डसे ।
मसोसे मारी ने, चटपट बिचारे चल बसे ॥
सदा केसोने को, अब न दुखियों का दलमरे ।
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शङ्कर करे ॥५॥

बनी को रो बैठे, बिगड़ सुख के साधन गये ।
सुधी श्री खो बैठे, धन बिन भिखारी बन गये ॥
न काँटे बोने को, कुमति कुटिलों में भ्रम भरे ।
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शङ्कर करे ॥६॥

भूलों को भूलो ११

(दोहा)

भूल रहे भूले फिरें, भूल भरे परिवार ।
भूलों का करते नहीं, भूल बिसार सुधार ।।१।।

भारत की भूलें १२

(कजली-कलाप)

बोलो बोलो कैसे होगा,
ऐसी भूलों का सुधार ।।टेक।।

शुद्ध-सच्चिदानन्द एक है, शंकर--सकलाधार ।
निर्गुण, निराकार, स्वामी को, कहैं सगुण, साकार ।।
ऐसी भूलों का सुधार ।।१।।

मतवालों ने मानलिया है, जो सब का करतार ।
बैर, फूट बोगये उसी के, दूत, पूत, अवतार ।।
ऐसी भूलों का सुधार ।।२।।

बिरले विज्ञानी करते हैं, वैदिक-धर्म प्रचार ।
भूल भरे भोलों के कुल में, बहुधा लंठ-लबार ।।
ऐसी भूलों का सुधार ।। ३ ।।

ठीक टिकाना बतलाने के, बन बन ठेकेदार ।
ठगिया औरों को ठगते हैं, जटिल-थपेड़े मार ।।
ऐसी भूलों का सुधार ।।४।।

-कल्पित-स्रष्टा के सूचक हैं, समझे असदुद्धार ।
योंहीं अपने आप हुआ है, यह समस्त संसार ।।
ऐसी भूलों का सुधार ।।५।।

भिन्न भिन्न विश्वास हमारे, भिन्न भिन्न व्यवहार ।
भेद भिन्नता के अपनाये, भिन्न चलन आचार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥६॥

सिद्धों के आगम-कानन को, काटें कुमत-कुठार ।
समझें सद्ग्रन्थों को जड़-धी, जड़ता के अनुसार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥७॥

विद्या के मन्दिर हैं जिन के, गुण-धर-ज्ञानागार ।
होड़ लगाते हैं उन से भी, गौरव हीन गमार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥८॥

विज्ञ-ब्रह्मचारी करते हैं, अभिनव-आविष्कार ।
सुबुध बने बच्चों के बच्चे, उन की सी धज धार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥९॥

फैली फूट लड़ें आपस में, बैर विरोध पसार ।
कहिये ? ये फुट्टैल करेंगे, कब किस का उद्धार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥१०॥

करडाला आलस्य योग ने, हल चल का संहार ।
कर्म—हीन बन्धन से छूटे, ब्रह्म बने सविकार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥११॥

पति पूजे श्रीपति को, पत्नी, परसे मियां, मदार ।
दो मत जुड़े एक जोड़ी में, ठनी रहै तकरार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥१२॥

भिक्षुक, भूखों पै पड़ती है, निठुर दैव की मार ।
हा ! न अनाथों को अपनाते, करुणा कर दातार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥१३॥

अपने ऊत कपूतों पै भी, करें कृपा कर प्यार ।
औरों के व्रत-शील सुतों को, समझें भूतल-भार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥१४॥

देशी-शिल्पकार दुख भोगें, बैठ रहे मन मार ।
देखो दस्तकार--परदेशी, सुख से करें विहार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥१५॥

उन्नति-शील विदेशी फूलें, कर उद्यम व्यापार ।
हम ठाली रोते हैं उन की, ओर निहार निहार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ १६ ॥

रहे कूप-मण्डूक न देखा, विशद-विश्व-बिस्तार ।
हाय हमारी रोक टोक पै, पड़ी न अबलों छार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ १७ ॥

रंग रंग सम्पति की सेना, पहुँची सागर पार ।
रीता हुआ हाय! भारत का, अब अक्षय-भण्डार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ १८ ॥

जिन के गुरु ज्ञानी जीते थे, प्रभुता पाय अपार ।
उन को अपने आपे पै भी, नहीं रहा अधिकार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ १९ ॥

सिंह नाम धारी रसिकों ने, फैंक दिये हथियार ।
उगलें राग बजें तम्बूरे, तबले, बेणु सितार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ २० ॥

शर्मा, वर्मा, गुप्त, उपजते, अब दासत्व बिसार ।
तो फिर ऊँचे क्यों न चढ़ेंगे, कंजर, डोम, चमार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ २१ ॥

वीर—धर्म की टेक टिकाई, गलमुच्छे फटकार ।
औसर आते ही बन बैठे, केहरि कायर-स्यार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ २२ ॥

देखें चित्र, चरित्र, बड़ों के, पढ़ें पुकार पुकार ।
तो भी हा ! न दुर्दशा अपनी, निरखें आंख उघार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ २३ ॥

अधम, आततायी, पाखण्डी, उजबक, ज्वारी, जार ।
गौरव, दान, मान पाते हैं, साधु—वेष बटमार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ २४ ॥

विधि-वल्लभ का वाणी से भी, करें न शठ सत्कार ।
नीचों में मिलते, उस ऊँचे, पौरुष पर धिक्कार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ २५ ॥

कामी—कौल कुकर्म पसारें, खोल प्रमाद-पिटार ।
खोटे रहे खसोट सभ्यता,-दुलहिन का शृङ्गार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ २६ ॥

आठ वर्ष की गौरि कुमारी, बरे अजान कुमार ।
बाल-विवाह गिराता है यों, घेर घेर घर बार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ २७ ॥

डोकर छैला बने छोकड़ी, बरनी के भरतार ।
छी छी छी बुढ़बा-मंगल को, तजें न ऊत उतार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ २८ ॥

दारा-गण के गीत निचोड़ें, वनिता पन का सार ।
धन्य अविद्या-दुलही तेरा, देख लिया दरबार ॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ २९ ॥

हाय! बच्चियों पै रखते हैं, विधवा पन का भार।
धर्म-शत्रु हेकड़ पञ्चों के, हटें न नीच-विचार॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ ३० ॥
त्याग प्रमाण प्रेम से पूजें, हठ के पैर पखार।
दुष्ट--दुराचारी करते हैं, अनुचित-अत्याचार॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ ३१ ॥
धर्म कर्म का ढोल बजाना, कर ने से इनकार।
क्या! वे बकवादी उतरें गे, भव-सागर से पार॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ ३२ ॥
मदिरा, ताड़ी, भङ्ग, कसूमा, रङ्ग निचोड़, निथार।
पीते वीर, न कण्टक जाने, मादक-व्रत की सार॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ ३३ ॥
झुलसे चाँडू-बाज़, गँजेड़ी, मदकी, चरसी, चार।
झाड़ झाड़ चूसें चिलमों को, अङ्ग पजार पजार॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ ३४ ॥
हुल्लड़, हुरदंगों की मारी, लाज लुकी हियहार।
कौन कहै गोरी रसियों की, महिमा अपरम्पार॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ ३५ ॥
देखो! भाव घटे गोरस का, बढ़ें न घृत के बार।
फिर भी गौओं पर खौओं की, चलती है तलवार॥
ऐसी भूलों का सुधार ॥ ३६ ॥
लाखों पत्तन, ग्राम उजाड़े, घटे घने परिवार॥
काल-कराल महामारी का, हा! न हुआ प्रतिकार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥ ३७ ॥

फ़िल्टर—वाटर से भी चोखी, सुरसरिता की धार।
गोड़ें उसे गोल गटरों के, नरक-नदी के यार॥
ऐसी भूलों का सुधार॥ ३८॥

राम राम, पालागन, भावे, जय गोपाल, जुहार।
करें सलाम, नमस्ते ही को, समझें बज्र—प्रहार॥
ऐसी भूलों का सुधार॥ ३९॥

जिस की कविता के भावों पै, रीझे रसिक—उदार।
टालें उस को वाह वाह के, दे दे कर उपहार॥
ऐसी भूलों का सुधार॥ ४०॥

अब तो आशा के कमलों पै, बरसे बैर-तुषार।
गाने के मिस रोन अभागे, शङ्कर धीरज धार॥
ऐसी भूलों का सुधार॥ ४१॥

हमारी दुर्दशा १३

(शार्दूल विक्रीडित-वृत्त)

आबैठी उर मोह—जन्य-जड़ता, विद्या विदा होगई।
पाई कायरता मलीन मन को, हा! वीरता खोगई॥
जागी दीन—दशा दरिद्र-पन की, श्री-सम्पदा सोगई।
माया शंकर की हँसाय हम को, रुद्रा बनी रोगई॥

अन्योक्ति से शोक—सूचना १४

(दोहा)

विधि क्या से क्या होगया, अटकी काल-कुचाल।
हंसों की महिमा मिटी, बगला बने मराल॥१॥

अन्योक्ति मूलक मनोवेदना १५

(सुन्दरी--सवैया)

इस मानसरोवर से अपनी, उस पोखर का न मिलान करेंगे ।
पिक, चातक, कीर, चकोर, शिखी, सब का अब तो अपमान करेंगे ॥
"कवि शङ्कर" काक, शचान, कुही,-कुल को अति आदर दान करेंगे ।
बक राजमराल बने पर हा!, जल त्याग, न गोरस पान करेंगे ॥१॥

कुपात्र-पुरोहित १६

(घनाक्षरी-कवित्त)

जन्म की बधाई धर, नाम की धराई, पूजा,
मुण्डन की और कर्ण-बेधन की पावेंगे ।
ब्रह्म-दण्ड देंगे, लेंगे चरण-पुजाई, आगे,
ब्याह के अनेक नेग चौगुने चुका वेंगे ॥
लेते ही रहेंगे दान दक्षिणा पुरोहित जी,
रोगी-यजमान से दुधार धेनु लावेंगे ।
शङ्कर ! मरे पै माल मारेंगे त्रयोदशा के,
छोड़ेंगे न बरसी कनागत भी खावेंगे ॥१॥

कोरेकथक्कड़ १७

(दोहा)

रबड़ी के रसिया बने, उपदेशक जी आप
औरों से कहते फिरें, गणिका-गण के पाप ॥१॥

एक व्याख्याता पर वेश्या की तान १८

(महागीत)

ऊल उगल रहा उपदेश,
गढ़ गढ़ मारे ज्ञान गपोड़ ।।टेक॥

पण्डित बना निरंकुश मूढ़, कपटी अधम अधर्मारूढ़,
इस के गन्दे अव-गुण–गूढ़, सुन लो कान लगाकर थोड़े ।
ऊ० उ० उ० ग० मा० ज्ञा० गपोड़े ॥

बकता फिरता है दिन रात, सब से कहता है यह बात,
मारो गणिका-गण पर लात, अपने कूट-कुकर्म न छोड़े ॥
ऊ० उ० उ० ग० मा० ज्ञा० गपोड़े ॥

मेरा सुन्दर-वदन बिलोक, तन को, मन को सका न रोक,
झपटा, झटका पटका ठोक, अटका बार बार कर जोड़े ।
ऊ० उ० उ० ग० मा० ज्ञा० गपोड़े ॥

पकड़े काकोदर–बिकराल, चूमे जलज-प्रफुल्लित–लाल,
पूजे शङ्कर–युगल-बिशाल, ठग ने बाण मदन के तोड़े ॥१॥
ऊ० उ० उ० ग० मा० ज्ञा० गपोड़े ॥

शृङ्गार–सेवक १८

(दोहा)

पूजैं नायक, नायिका, जिनको मङ्गल मान ।
क्यों न करें श्रृङ्गार के, वे सत्कवि गुण गान ॥१॥

सुकविसमाज १९

(गीत)

गुण गान करें रसराज के,
यश–भाजन सुकवि हमारे ॥टेक॥

वैसिक, धृष्ट, ऊत, पण्डित हैं, धर्म–चतुष्टय से मण्डित हैं,
त्रिविध खण्डित से खण्डित हैं, नख-शिख रसिक-समाज के,
रति-वल्लभ, मदन-दुलारे ।
यश-भाजन सुकवि हमारे ॥

निरखी रस में बोर अनूढ़ा, निपट अछूती रही न ऊढ़ा,
परखी विदुषी और विमूढ़ा, सफल नयन कर लाज के,
हँस मधुर वचन उच्चारे ॥
यश भाजन सुकवि हमारे ॥
धर अज्ञात यौवना पटकी, मन में ज्ञात यौवना अटकी,
हाय नवोढ़ा की छवि खटकी, पकड़ चरण शुभ-काज के,
छल-जल बरसाय पखारे ।
यश-भाजन सुकवि हमारे ॥१॥
साध स्वकीया शुद्ध-लगन से, पूजी परकीया तन, मन से,
गणिका भी अपनाली धन से, कर करतब सुख—साज के,
शंकर कुल—चरित सुधारे ।
यश-भाजन सुकवि हमारे ॥ १ ॥

होली का हुरदङ्ग १८

(दोहा)

होली के हुरदङ्ग ने, धार कुमति का रङ्ग ।
छोड़ी लाज, समाज का, करडाला रस-भङ्ग ॥ १ ॥

बेजोड़ होली १९

(गीत)

भारत ! कौन वदेगा होड़,
तुझ से होली के हुल्लड़ की ॥ टेक ॥
मटकें मतवालों के गोल, खेलें खोल खोल कर पोल,
पीटें ढोर ढमाढम ढोल, गाते डोलें तान अकड़ की ।

भा० कौ० ब० हो० तु० हो० हुल्लड़ की ॥
ऊले प्रामादिक-हुरदङ्ग, बरसे दुर्व्यसनों का रङ्ग,
उमगी झूमें भ्रम की भङ्ग, लीला ऐंठ दिखाती अड़की ॥
भा० कौ० ब० हो० तु० हो० हुल्लड़ की ॥
शुद्धा विधि का वेष विगाड़, फरिया लोक-लाज की फाड़,
झंझट झोंके झगड़े झाड़, फूँके, आग बैर की भड़की ।
भा० कौ० ब० हो० तु० हो० हुल्लड़ की ॥
विद्या-बल से पिण्ड छुड़ाय, धन की पूरी धूलि उड़ाय,
"शङ्कर" धी का मुण्ड मुड़ाय, फूटी आंख फूट की फड़की ॥
भा० कौ० ब० हो० तु० हो० हुल्लड़ की ॥ १ ॥

होली का हुल्लड़ २०

(दोहा)

होली का हुल्लड़ मचा, उलें उजबक ऊत ।
भूखे भारत पै चढ़ा, भजक-भ्रम का भूत ॥ १ ॥

होलिकाष्टक २१

(सुभद्रा-छन्द)

उद्यम को कर अन्ध, आंख अवनति ने खोली है ।
धन की धूलि उड़ाय, अकिञ्चनता हँस बोली है ॥
ठसक भीतर से पोली है ।
खुल खुल खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥ १ ॥
गर्ब-गुलाल लपेट, रङ्ग रिस का बरसाया है ।
खाय बैर-फल, फूट, फड़कता फगुआ पाया है ॥

भरी अनबन से झोली है।
खुल खुल खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥ २ ॥

शोणित-लाल सुखाय, लगे तन पीले करलाये।
पट पट पीटें पेट, सांग भुक्खड़ भी भरलाये ॥
अधोगति सब को रोली है।
खुल खुल खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥ ३ ॥

गोरी-धन पर आज, धनी की चाह टपकती है।
श्यामा लगन लगाय, पिया की ओर लपकती है ॥
चढ़ी चञ्चल पर भोली है।
खुल खुल खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥ ४ ॥

लोक-लाज पर लात, मार कर बात बिगाड़ी है।
ऊल रहा हुरदङ्ग, सुमति की फरिया फाड़ी है ॥
अकड़ की चमकी चोली है।
खुल खुल खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥ ५ ॥

ऊल ऊल कर ऊत, ढमा ढम ढोल बजाते हैं। sound
थिरकें थकें न थोक, गितक्कड़, तुक्कड़ गाते हैं ॥
ठना ठन ठनी ठठोली है।
खुल खुल खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥ ६ ॥

सब के मस्तक-लाल, न किस का मुखड़ा काला है।
भङ्गड़ भस्म-रमाय, रहे हुल्लड़ मतवाला है ॥
न इस में कराटक-टोली है।
खुल खुल खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥ ७ ॥

चढ़े न भ्रम की भङ्ग, कहीं पौराणिक-शङ्कर को।
समझे अपने भूत, न ऐसे यूथ भयंकर को ॥

निरन्तर-समता होली है ।
खुल खुल खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥ ८ ॥

फक्कड़ का फाग २२

(दोहा)

फूँको होली सुमति की, देकर अड़ की आग ।
खेले दीन दिवालिया, भारत-भिक्षुक फाग ॥ १ ॥

दिवालिया देश की होली २३

(घनाक्षरी-कवित्त)

ऊलें अवधूत नाचें दूत भूतनाथ के से,
हाट हुरदङ्ग ने असभ्यता की खोली है ।
अङ्गों में अनङ्ग की जगावे ज्योति मादकता,
लाज के ठिकाने ठनी शङ्कर ठठोली है ॥
लालिमा उड़ावेगी दरिद्रता के दङ्गल में,
कालिमा के कर में गुलाल भरी झोली है ।
धूलिमें मिलेगी कल ही को लीला हुल्लड़ की,
भारत दिवालिया की आज हाय होली है ॥ १ ॥

हायरे ! होली २४

[दोहा]

फागुन में फूले फिरें, खुल खुल खेलें फाग ।
गोरी, रसियों को फले, रङ्ग, राग, अनुराग ॥ १ ॥
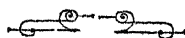
होली है २५

[घनाक्षरी कवित्त]

देखो रे! अजान, ऊत खेलें फाग फागुन में,
भङ्ग की तरङ्गों में अनङ्ग सरसाया है।
बाजें ढप, ढोल नाचें गोल बांध बांध गावें,
साखी सर बोल भारी हुल्लड़ मचाया है॥
बौरे अवधूत भूखे भारत के छैला बने,
भूत-गण जान धोखा शङ्कर ने खाया है।
दूर मारी लाज आज गाज गिरी सभ्यता पै,
संठों का समाज लंठ-राज बनिआया है॥ १॥

पढुओं की होली २६

[दोहा]

सम्पादक छैला बने, रसिक बने लिक्खाड़।
होली के हुरदंग की, देख उखाड़ पछाड़॥ १॥

पत्रिका और पत्रों की होली २७

*[घनाक्षरी-कवित्त]

माता भगिनी का भाव भावे न बसुन्धरा को,
लक्ष्मी का लक्ष्य कमला के मन भाया है।
चन्द्रिका प्रभा के बीच सन्ध्या का गुलाल उड़े,
पण्डिता—सरस्वती ने रङ्ग बरसाया है॥

---

*माता १, भारतभगिनी २, बसुन्धरा ३, लक्ष्मी ४, कमला ५, निगमागम चन्द्रिका ६, जुझौतियाप्रभा ७, सन्ध्या ८, सरस्वती ९, मोहिनी १०, हितवार्ता ११, प्रियम्वदा १२, सनातन-धर्म-पताका १३, वनिताहितैषिणी १४, विहारीलाल = रसिकमित्र १५।

मोहिनी सी डाले हितवारता प्रियम्वदा की,
सौरभ सनातनी-पताका ने उड़ाया है ।
लूली-वहू, बनिताहितैषिणी बनाई है तो,
शङ्कर विहारी-लाल लूलू-बनिआया है ॥ १ ॥

खोटा बेटा २८

[दोहा]

बात बिगाड़ी बाप की, कर कपूत ने पाप ।
प्राण बिसारे सीस पै, धार कुकर्म-कलाप ॥ १ ॥

उद्धत-धूर्त २९

(गीत)

ऊलें उद्धत ऊत उतार,
धन की धूलि उड़ानेवाले ॥ टेक ॥
श्रम का सारा सार निचोड़, देकर डेड़लाख का जोड़,
तन से धन से नाता तोड़, चलते हुये कमानेवाले ।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ानेवाले ॥
पूँजी कृपण-पिता की पाय, मोघू उच्च-कुलीन कहाय,
मन की माया को उमगाय, उफने पेट फुलानेवाले ।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ानेवाले ॥
छैला लिखना, पढ़ना छोड़, अकड़ें विद्या से मुख मोड़,
फूले आंख सुमति की फोड़, पशुता को अपनानेवाले ।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ानेवाले ॥
भाये बढ़िया भोग-विलास, बैठे वञ्चक, पामर पास,
करते सिंहों का उपहास, गीदड़ गाल बजाने वाले ।

ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ानेवाले ॥

पाये मन भाये सुख-भोग, सूझे विषयों के अतियोग,
घेरें चाटुकार ठगलोग, अटके भुक्खड़ खानेवाले ।

ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ानेवाले ॥

निथरे, छने कसूमा, भङ्ग, उड़ने लगी वारुणी सङ्ग,
चांडू, मदक बिगाड़े ढङ्ग, झूमें चिलम चढ़ानेवाले ।

ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ानेवाले ॥

गायक राग-रंगीले गाय, नर्त्तक नाचें नाच नचाय,
लूटें ढोल बजाय बजाय, कत्थक, भांड़, रिझानेवाले ।

ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ानेवाले ॥

सुन्दर-बेष छोकड़े धार, विरचें श्यामा-श्याम-विहार,
घूरें रोचक-रास निहार, भावुक-भक्त कहानेवाले ।

ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ानेवाले ॥

लेकर नारि पराई साथ, धोते सुकृत-सुधा में हाथ,
पीते सुरसरिता का पाथ, आवागमन छुड़ानेवाले ।

ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ानेवाले ॥

फूटा, फैल गया उपदंश, पिघला वारवधू का अंश,
उत्तम उपजाने को वंश, निकले नाक सड़ानेवाले ।

ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ानेवाले ॥

ऋण से बढ़ा ब्याज का मान, बंगले, कोठी, घर, दूकान,
देकर बेचा सब सामान, बिगड़े ठाठ बनानेवाले ।

ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ानेवाले ॥

खोकर माल बने कंगाल, पञ्जर सूखा, पटके गाल,
ओढ़ें चिथड़े लटकी खाल, भिनकें बाल बढ़ानेवाले ।

ऊ० ऊ० उ० उ० उड़ानेवाले ॥

जो खल खाते ठोकर लात, दाता कहते थे दिन रात,
वे अब नहीं पूछते बात, भटकें चने चबानेवाले ।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ानेवाले ॥
भिक्षुक हो बैठे निरुपाय, निकला हितू न कोई हाय,!
छोड़े प्राण हलाहल खाय, उठते नहीं उठानेवाले ।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ानेवाले ॥
ऐसे दाहक-दृश्य विलोक, शङ्कर किसे न होगा शोक,
अब तो गुंड़ों की गति रोक, ठाकुर! ठीक ठिकानेवाले ।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ानेवाले ॥ १ ॥

हा! क्या से क्या होगया ३०

(दोहा)

द्वार अविद्या का किया, जिस भारत ने बन्द ।
नारी हैं उस देश की, अब ऐसी मति मन्द ॥ १ ॥

अनार्य्या-भार्या ३१

(घनाक्षरी-कवित्त)

आखतें दिखाऊँगी अघोरी से न और कहीं,
भोंदुआ के बाप का छदाम ठगवाऊँगी ।
मीरा मनवाऊँगी जमात जोड़ जोगनों की,
गूँगा-पीर-ज़ाहर की जोति जगवाऊँगी ॥
चादर चढ़ाऊँगी बराही के चबूतरा पै,
भोर उठ चूहड़े का झाड़ा लगवाऊँगी ।
टोना टलवाऊँगी गपोड़े मान शङ्कर के,
जीजी इस लाला पै हरा न हगवाऊँगी ॥ १ ॥

कुमाता ३२

(दोहा)

लोट रहा क्यों धूलि में, उठ उठ मेरे लाल ।
चल दादी का फोड़दे, बेलन मार कपाल ॥१॥

रूठे लाल को लोरी ३३

(गीत)

मत रोवे ललुआ लाड़ले,
हँस बोल मनोहर बोली ॥टेक॥

हाय! धूलि में लोट रहा है, मेरी खाल खसोट रहा है,
काटे बाल बकोट रहा है, उठ कर झगुली झाड़ले,
ले बिगुल, फिरकनी, गोली ।
हँस बोल मनोहर बोली ॥

मान कहा कनियां में आजा, पीकर दूध मिठाई खाजा,
खेल बालकों में बन राजा, सब को पटक पछाड़ले,
हटजाय न अटके टोली ॥
हँस बोल मनोहर बोली ॥

प्यारे! पीट बहन–बाई को, पकड़ बुआ को भौजाई को,
घेर घसीट चची, ताई को, झटपट लहँगे फाड़ले,
फिर तार तार कर चोली ।
हँस बोल मनोहर बोली ॥

दे दे गाली कुनबे भर को, नाच नचाले सारे घर को,
ठोक सगे बाबा शङ्कर को, निधड़क मूँछ उखाड़ले,
कर ठसक पिता की पोली ॥
हँस बोल मनोहर बोली ॥१॥

मोधू कविराज ३४

[दोहा]

चूँसे कविता-जोंक ने, मान-हीन-कवि-राज ।
मार कुमित्रा की सहैं, समझ कोढ़ में खाज ॥१॥

कर्कशा ३५

(मालती सवैया)

सास मरे ससुरा पजरे इस, बाखर में पल को न रहूँगी ।
सौति जिठानी छुटी ननदी अब, एक कहैगी तो लाख कहूँगी ॥
जेठ जलाबा को मारूँ पटा सुन, देवर की फबती न सहूँगी ।
लेबस अन्त नहीं पिया शंकर, पीहर की कल गैल गहूँगी ॥ १॥

महामारी की मार ३६

(दोहा)

मोह-जाल में जो फँसे, बिन विज्ञान-विकाश ।
क्यों न महामारी करे, उन असुरों का नाश ॥१॥

धूमकेतु ३७

(गणेश-गीत)

विकराल-कलेबर धार,
धरा पर धूम्र-केतु आये ॥टेक॥
तक तक तीर मार ने मारे, रुद्र-देव ने नयन उघारे,
जो रिस रही तीसरे दृग में, उस ने उपजाये ।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥

त्रिभुवन-काल-पिता के प्यारे, छीन लिये रुज-सेवक सारे,
आदर पाय रोग-मण्डल में, अगुआ कहलाये ॥
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
सर्व-नाश के रसिक-सयाने, व्यास-देवने प्रभु जब जाने,
तब तो आप महाभारत के, लेखक ठहराये ।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
अब सटकारी-शुण्ड नहीं है, तन मोटा गज-मुण्ड नहीं है,
महिमा छोड़, गूढ़-लघिमा की, पूँछ पकड़ लाये ॥
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
अङ्ग असंख्य कीट अति छोटे, साठ बाल से अधिक न मोटे,
अणुमय आप यंत्र के द्वारा, देख परख पाये ।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
जब से प्रभुका ठीक ठिकाना, हम ने धरणी-तल में जाना,
तब से पूज पूज जड़ ढेले, सब से पुजवाये ॥
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
गुप्त-विहार किया करते हो, केवल पावक से डरते हो,
वैदिक-होम-हीन-भारत पै, निर्भय चढ़ धाये ।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
ठौर ठौर मुरदे गढ़ते हैं, प्रभु के भोगस्थल बढ़ते हैं,
इन भूलों पर हाय! अभागे, नेक न पछताये ॥
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
कालकूट बिल में घुस घोलें, प्रभु को लाद लुड़कते डोलें,
क्षुद्र-काय-बाहन-द्रुतगामी, मूषिक मन भाये ॥
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
जितने चूहों पर चढ़ते हो, मार मार करते बढ़ते हो,
वे सब के सब प्रेत-लोक को, पल में पहुँचाये ॥

वि० क० धा० ध० धू० आये ॥

बीन बीन कर दीन विचारे, जीवन, प्राण–हीन कर मारे,

पीन-कुटुम्ब धींग धनिकों के, ढिल्लड़ कर ढाये ।

वि० क० धा० ध० धू० आये ॥

मानव-दल पल्लव से तोड़े, बानर, कीट, पतङ्ग, न छोड़े,

उरग, बिहङ्ग, और चौपाये, बलि बनाय खाये ॥

वि० क० धा० ध० धू० आये ॥

पहले तीव्र–ताप चढ़िआवे, पीछे कठिन--गांठ कढ़िआवे,

पुनि प्रलाप यों भाँति भाँति के, कौतुक दरसाये ।

वि० क० धा० ध० धू० आये ॥

देख देख भय, शोक, उदासी, बिकल पुकारें भूतल वासी,

हुआ हर्ष कर्पूर, कमल से, मुखड़े मुरझाये ॥

वि० क० धा० ध० धू० आये ॥

खात खात इतने दिन बीते, किये ग्राम, पुर, पत्तन रीते,

अवलों अपने लम्बोदर को, नाथ! न भरपाये ।

वि० क० धा० ध० धू० आये ॥

हम से नाम अनेक धराये, अरब जाय ताऊन कहाये,

पाय प्लेग पद अँगरेज़ों से, इतने इतराये ॥

वि० क० धा० ध० धू० आये ॥

कांप रहे कविराज हमारे, बचते फिरें तबीब बिचारे,

डाक्टरों की अकड़ पकड़ से, नेक न सकुचाये ।

वि० क० धा० ध० धू० आये ॥

अब तो देव! दया उर धारो, नर भक्षण की बान विसारो,

सेवक भूत बने जंगल के, छनियाँ घर छाये ॥

वि० क० धा० ध० धू० आये ॥

पोल खोल ढिलमिल ढाँचे की, रचना रच रूपक-साँचे की,
इस में ताय तुम्हें शङ्कर ने, बेढव ढलकाये ।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥१॥

मन्दोद्गार ३८

(दोहा)

अन्ध अँधेरे में सुनो, करलो अँखियाँ बन्द ।
उगलेंगे अन्धेर यों, अबुध-अविद्यानन्द ॥ १ ॥

अविद्यानन्द का व्याख्यान ३९

(भुजंगयात्मक-मिलिन्दपाद)

तुही शंकराधार संसार है । निराकार है और साकार है ॥
बना सर्व-स्रष्टा-विधाता तुही । गुणी निर्गुणी दर्प-दाता तुही ॥
खिली आज तेरी कृपा की कली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥ १ ॥

नकीला नहीं सूँघता गन्ध है । निहारे बिना आँख का अन्ध है ॥
सुने तू बिना कान बूँचा रहै । छुये पै अछूता समूँचा रहै ॥
मिला तू गिरा-हीन वक्ता-बली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥ २ ॥

अरे ओ अजन्मा! कहां तू नहीं । न कोई ठिकाना जहां तू नहीं ॥
किसी ने तुझे ठीक जाना नहीं । इसी से यथातथ्य माना नहीं ॥
शिखा सत्य की झूँट ने काटली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥ ३ ॥

तुझे तर्क ने तोल पाया नहीं । किसी युक्ति के हाथ आया नहीं ॥
कहीं कल्पना बांझ का पूत है । कहीं भावना का महा-भूत है ॥

मिलेगी किसी को न तेरी गली ॥
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥ ४ ॥

कला अस्ति की जानती है तुझे । न धी बुद्ध की मानती है तुझे ॥
कहा सच्चिदानन्द तू वेद ने । बताया नहीं भेद निर्भेद ने ॥
न चूके दुई की दुनाली चली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥ ५ ॥

मुझे क्या किसी भाँति का तू सही । कथा मंगलाभास की सी कही ॥
जहाँ भक्ति तेरी रहैगी नहीं । वहां धर्म—धारा बहैगी नहीं ॥
करे क्या पड़ी कीच में निर्मली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥ ६ ॥

कटीली कृपा है महाराज की । अड़ीली अथाई जुड़ी आज की ॥
भिड़ी भिन्नता के महा भक्त हैं । सिड़ी एकता के न आसक्त हैं ॥
भरी भीड़ से पुराय—कर्मस्थली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥ ७ ॥

अरे ! आज मेरी कहानी सुनों । नई बात पोथी पुरानी सुनों ॥
किसी अंश पै दंश देना नहीं । यहाँ तर्क से काम लेना नहीं ॥
डिगेगी नहीं डांट से मंडली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥ ८ ॥

अरे जो न माने वड़े का कहा । उसे ध्यान क्या सभ्यता का रहा ॥
युगाचार का भूलना भूल है । अविश्वास अन्धेर का मूल है ॥
मिली मानदा—धर्म—ग्रन्थावली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥ ९ ॥

लिखा है कि लज्जा रहैगी नहीं । कुशिक्षा किसी की सहैगी नहीं ॥
मिले मेल का नाश होजायगा । जगा बैर को प्रेम सोजायगा ॥
खिलाता खलों को खिलाड़ी-कली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥ १० ॥

चलो ताकते काल की चाल को। घसीटो धनी और कंगाल को ॥
डरेगा नहीं जो किसी पाप से। बचेगा वही शोक सन्ताप से ॥
उठाता नहीं कष्ट कोई भली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥ ११ ॥

सुने स्वर्ग से लौ लगाते रहो। पुनर्जन्म के गीत गाते रहो ॥
डरो कर्म प्रारब्ध के योग से। करो मुक्ति की कामना भोग से ॥
अश्रद्धा-सुधा से भरो अञ्जली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥१२॥

महीनों पड़े देव सोते रहैं। महीदेव डूबे डुबोते रहैं ॥
मरी चेतना—हीन गंगा बही। न पूरी कला तीरथों में रही ॥
कमाऊ जड़ों की न पूजा टली।
न विज्ञान न फूला न विद्या-फली ॥१३॥

निकम्मे सुरों की न सेवा करो। चढ़े भूतनी भूतड़ों से डरो ॥
मसानी मियाँ को मना लीजिये। जखैया रखैया बना लीजिये ॥
करेंगे बली निर्बलों को भली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥१४॥

हँसो हंस को शारदा को तजो। उलूकासनी-इन्दिरा को भजो ॥
धनी का धरो ध्यान छोटे बड़े। रहो-द्रव्य की लालसा में खड़े ॥
मिला मेल मा से महा—मंगली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥१५॥

अनारी गुणी मानते हैं जिन्हें। गुणी जालिया जानते है जिन्हें ॥
उन्हे दान से मान से पूजिये। हठी हेकड़ों के हितू हूजिये ॥
छकें छाक छूटे न छैला—छली।
न विज्ञान फूला न विद्या न फली ॥१६॥

सुधी साधु को मान खाना न दो। किसी दीन को एक दाना न दो ॥

बड़े हो बड़ा दान देना वहाँ । बड़ाई करे वर्ण-माला जहाँ ॥
करें ख्याति की ठोस क्यों खोखली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥१७॥

कभी गाय बूढ़ी नहीं पालना । किसी मिश्र को दान दे डालना ॥
बड़ाई मिलेगी बड़ी आप को । इसी भांति काटा करो पाप को ॥
कहो गैल गोलोक की जान ली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥१८॥

अड़े पक्ष के तार ताने बनें । सड़े-सूत के बोल बाने बनें ॥
घने जाल जाली बुना कीजिये । न कोरी कहानी सुना कीजिये ॥
कबीरी-कला गाढ़ से काढ़ ली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥१९॥

रचो ढोंग पाखण्ड छूटे नहीं । छुआ छूत का तार टूटे नहीं ॥
मिले फूट के बोल बोला करो । न अन्धेर की पोल खोला करो ॥
भरी भेद से जाल की कुंडली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥२०॥

जहां झंझटों का झड़ाका न हो । ध्वजा धारियों का धड़ाका न हो ॥
वहां खोखले-खेल खेला करो । पड़े पार पै दण्ड पेला करो ॥
जले जी न चिन्ता करे बेकली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥२१॥

महा-मूढ़ता के सँगाती रहो । दुराचार के पक्षपाती रहो ॥
जुड़ें चौधरी पञ्च-पोंगा जहां । न बोला करो बोल-बीले वहां ॥
बदेंगे भला होड़ क्या जंगली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥२२॥

बुरी सीख सीखो सिखाते रहो । महा-मोह-माया दिखाते रहो ॥
विरोधी मिलें जो कहीं एक दो । उन्हें जाति से पांति से छेकदो ॥

पड़े न्याय के नाम की यों डली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥२३॥
बसे भैरवीचक्र में वीरता । विराजी रहै गर्व–गम्भीरता ॥
वहाँ वीर-वानैत जाया करो । कड़े-कराटकों को जलाया करो ॥
बने वर्ण–व्यापार की कज्जली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥२४॥
जगज्जाल से छूटजाना नहीं । बिना फन्द खाना कमाना नहीं ॥
न ऊँचे चढ़ो नीच होते रहो । बड़ों के बड़ों को बिगोते रहो ॥
कहो द्वैध की दाल चोखी गली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥२५॥
ठगो देशियों को ठगाया करो । बिना मेल मेले लगाया करो ॥
रुके ढोंग का ढाँच ढीला न हो । थवीली कहीं लोभ-लीला न हो ॥
ठगी दम्भ का पाय साँचा ढली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥२६॥
नई ज्योति की ओर जाना नहीं । पुराने दिये को बुझाना नहीं ॥
घनी सम्पदा को न हाँगा करो । भिखारी बने भीख माँगा करो ॥
भलों के लगी हाथ भिक्षा भली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥२७॥
अविद्वान, विद्वान, छोटे, बड़े । बड़े थे, बड़े हो, रहोगे बड़े ॥
सदा आप का बोलबाला रहै । कुदेवावली का उजाला रहै ॥
खिले भस्म, बिन्दा दिपै सन्दली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥२८॥
महा-तंत्र के मंत्र देते रहो । खरी दक्षिणा दान लेते रहो ॥
लगातार चेले बढ़ाते रहो । नई चेलियों को पढ़ाते रहो ॥

रहै श्याम के साथ श्यामा लली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥२९॥
घटी चाल को चंचला कीजिये। भलाई न भूलो भला कीजिये ॥
खरे खेल खेलो खिलाते रहो। सुधा सेवकों को पिलाते रहो ॥
बढ़ाती रहै मान गंगा-जली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥३०॥
महा-मूढ़ मोधू मिलापी रहैं। सँगाती सखा पोच पापी रहैं ॥
धनी दूध बूरा पिलाते रहैं। खरे माल खोटे खिलाते रहैं ॥
कहो? कौन से दक्षिणा यों न ली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥३१॥
नहीं सींचना खेत संग्राम के। खड़े खेत जोता करो ग्राम के ॥
कड़े फूट के बीज बोया करो। सड़े मेल का खोज़ खोया करो ॥
जियें जाति-जोता न होते हली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥३२॥
छड़ीधार छैला छबीले बनो। रँगीले रसीले फबीले बनो ॥
न चूको भले भोग भोगी बनो। किसी बेड़नी के वियोगी बनो।
बने यों गली मार घेरें गली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥३३॥
अमीरो धुआँ धार छोड़ा करो। पड़े खाट के बान तोड़ा करो ॥
मज़ेदार मूछें मरोड़ा करो। निठल्ले रहो काम थोड़ा करो ॥
चबाते रहौ पान दौरे डली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥३४॥
रचो फाग होली मचाया करो। नई कंचनी को नचाया करो ॥
रँगीले बनै रंग डाला करो। भरे भाव जी के निकाला करो ॥

रहो भंग पीते, चबाते तली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥३५॥
न प्यारा लगे नाच गाना जिसे। कलंकी करे मांस खाना जिसे ॥
कसूमा, सुरा, भंग पीता नहीं। उसे जान लेना कि जीता नहीं ॥
कहो ? रे ललाहीज ! होजा लली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥३६॥
हँसे होलिका में न पाऊ बने। न दीपावली का कमाऊ बने ॥
न होली, दिवाली सुहाती जिसे। उसे छोड़ लूलू कहोगे किसे ॥
बना ढोर खाता न भूसा, खली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥३७॥
बड़ी चाह से ब्याह बूढ़े करें। नकीले कुलों की कुमारी बरें ॥
न बेटा सगी सास बाला कहे। न भाजी लला साठसाला कहै ॥
कहै क्यों न बाबा बधू बावली।
न विज्ञान फूला न बिद्या फली ॥३८॥
जहाँ बेटियाँ बेचना धर्म है। जहाँ भ्रूण-हत्या भला कर्म है ॥
बने रंडियाँ बालरंडा जहाँ। वहाँ पाप जीता रहैगा कहाँ ॥
अनाथा सुता की जमा मारली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥३९॥
लगा लाग दूकान खोला करो। कभी ठीक सौदा न तोला करो ॥
कहो ग्राहकों से कि धोखा नहीं। भला कौन सा माल चोखा नहीं ॥
बढ़ी, धूलि में यों न पूँजी रली।
न विज्ञान फूला न बिद्या फली ॥४०॥
लगातार पूँजी बढ़ाते रहो। कमाते रहो ब्याज खाते रहो ॥
न कंगाल का पिण्ड छोड़ा करो। लुहू लीचड़ों का निचोड़ा करो ॥

कहो ? दाल यों छातियों पै दली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥४१॥
रुई, नाज देशी दिया कीजिये । विदेशी खिलौने लिया कीजिये ॥
हवेली घरों को सजाया करो । पड़े मस्त बाजे बजाया करो ॥
चढ़ें मोटरों पै मझोली न ली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥४२॥
खरी खाँड़ देशी न लाया करो । बुरी बीट चीनी गलाया करो ॥
लुके लाट, शीरा मिलाते रहो । दुरंगी मिठाई खिलाते रहो ॥
कहो ? नाक यों धर्म की काटली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥४३॥
धराई जमा मारनी हो जहाँ । अजी ! काढ़ देना दिवाला वहाँ ॥
किसी का टका भी चुकाना नहीं । न थोथे उड़ाना थुकाना नहीं ॥
छुपी धूप की धाक छाया ढली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥४४॥
चितेरे, कलाकार, कारीगरो । उठो काम का नाम ऊंचा करो ॥
पड़े गुप्त क्यों विश्वकर्म्मा बनो । सुशर्म्मा बनो, वीर-वर्म्मा बनो ॥
कहो ? लो बला नीचता की टली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥४५॥
न भाषा पढ़ो, राज-भाषा पढ़ो । बढ़ो वीर ऊँचे पदों पै चढ़ो ॥
करो चाकरी घूँस खाया करो । मिले वेतनों को बचाया करो ॥
कहो ? न्याय क्या नीति भी नापली ।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥४६॥
गवाही कभी ठीक देना नहीं । कहीं सत्य से काम लेना नहीं ॥
भले मानसों को सताया करो । खरे खूसटों को बचाया करो ॥

दुराचार को मान लो मंगली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥४७॥
धता इंडिया की भजों को कहो। सजे लंडनी फ़ैशनों से रहो ॥
बरांडी पित्रो मीट खाया करो। टके होटलों के चुकाया करो ॥
बरो नारि गोरी मरे साँवली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥४८॥
बहू बेटियों को पढ़ाना नहीं। घरेलू घटी को बढ़ाना नहीं ॥
पढ़ी नारि नैया डुबो जायगी। किसी मित्र की मैम होजायगी ॥
बनेगी नहीं हंसनी कागली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥४९॥
सुनो तुकड़ो बात भद्दी नहीं। तुकों की करामात रद्दी नहीं ॥
यहां भूल का क़ाफ़िया तंग है। अरे नागरो! नागरी दंग है ॥
भुजंगी—कला—पिंगला काढ़ली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥५०॥
कहे पद्म भू बांधा थोड़े नहीं। गिनो गांठ बांधो गपोड़े नहीं ॥
सुना दो छिली ईंट को गालियां। कथा हो चुकी पीट दो तालियां ॥
सुसीमा सुधा—सिन्धु की लांघली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥५१॥

पछतावा ४०

(दोहा)

हा! खोटे दिन आगये, बीत गया शुभ-काल।
भारत—माता ने जने, अबुध, हीज, कंगाल ॥१॥

हायरे ! दुर्दैव ४१

[दादरा]

हाय ! कैसे कुदिन अब आय गये ॥टेक॥
बौरे बड़ों के बड़प्पन की बड़में, छोटों के सारे सहारे समाय गये ।
हाय ! कैसे कुदिन अब आय गये ॥
भागे भले-भोग भोजन को भटकें, भूखे, अभागे, भिखारी कहाय गये ॥
हाय ! कैसे कुदिन अब आय गये ॥
चेले चलाते न चेतन की चरचा, पूजें जड़ों को पुजारी पुजाय गये ।
हाय ! कैसे कुदिन अब आय गये ॥
शिक्षा सचाई की शंकर न समझें, अन्धे अनारी अविद्या बढ़ाय गये ॥
हाय ! कैसे कुदिन अब आय गये ॥१॥

दुःखार्तका निहोड़ा ४२

[दोहा]

जिस की चोटों से हुआ, जीवन चकनाचूर ।
हा ! मेरे उस दुःख को, करदे शंकर दूर ॥१॥

प्रभो ! पाहि ! पाहि !! ४३

(गीत)

करदे दूर दयालु महेश,
मुझ पै दारुण-दुःख पड़ा है ॥ टेक ॥

मन में ऊल रहा अविवेक, तन में उपजे रोग अनेक,
टिकती नहीं बचन में टेक, पकड़े पातक-पुञ्ज खड़ा है ।
क० दू० द० म० मु० दा० दु० पड़ा है ॥
कुनबा रहै सदैव उदास, बहुधा करता है उपवास,
बिगड़ा ढङ्ग छदाम न पास, घर में घोर-दरिद्र अड़ा है ॥
क० दू० द० म० मु० दा० दु० पड़ा है ॥
श्रम की पूँछ न पकड़ें पूत, उद्यम करें न अल्लड़ ऊत,
अकड़ें तोड़ सुमति का सूत, छलिया छोटे, कुटिल बड़ा है ।
क० दू० द० म० मु० दा० दु० पड़ा है ॥
मेरा निरख नरक में वास, निन्दक करते हैं उपहास,
शङ्कर ! देख विषाद-बिलास, लघुता लिपटी, मान झड़ा है ॥
क० दू० द० म० मु० दा० दु० पड़ा है ॥

दीन विनय ४४

(दोहा)

देख दीनता दीन की, दीनदयालु-उदार ।
दीनानाथ उतार दे, भव-सागर से पार ॥१॥

दीन पुकार ४५

[सगणात्मक-सवैया]

कर कोप जरा मन मार चुकी, बल-हीन सरोग-कलेबर है ।
परिवार घना धन पास नहीं, भुजभग्न दरिद्र भरा घर है ॥
सब ठौर न आदर मान मिले, मिलता अपमान अनादर है ।
मुझ दीन अकिञ्चन की सुधि ले, सुख दे प्रभु तू यदि शङ्कर है ॥१॥

मन्दोच्च-गति ४६

(दोहा)

पानी गिरे समुद्र में, पर्वत पै चढ़ जाय।
पाय नीचता उच्चता, कौन नहीं चकराय ॥१॥

पुनरुद्धार की आशा ४७

(षट्पदी-छन्द)

भरती है भर पूर, लमक ऊपर लाती है।
वारि वहाय वहाय, अधोमुख मुड़काती है ॥
जल घड़ियों की माल, रहट पै यों फिरती है।
इस प्रकार प्रत्येक, जाति उठती गिरती है ॥
अब होगा भारत का भला, ब्रटिश-योग सुख-मूल है।
गुरु दयानन्द ज्ञानी मिले, शंकर-प्रभु अनुकूल है ॥१॥
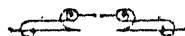
मन्दोद्भास का सार ४८

(दोहा)

जिस के द्वारा होगये, हम दरिद्र के दास।
उन दोषों का दृश्य है, समल-मन्द-उद्भास ॥१॥

विचित्रोद्भास

अंह्लोद्घोषण

अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये सम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳरताः ॥
य० ४० ॥९॥

प्रामादिक-मदोन्मत्त

* (शार्दूलविक्रीडित-वृत्त)

आदित्यस्य गतागतै रहरहः, संक्षीयते जीवितं ।
व्यापारैर्बहु कार्यभारगुरुभिः, कालो न विज्ञायते ॥
दृष्ट्वा जन्म जरा-विपत्ति मरणं, त्रासश्च नोत्पद्यते ।
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरा, मुन्मत्तभूतं जगत् ॥ १ ॥

(पञ्चचामर-वृत्त)

महेश के महत्व का, विवेक बार बार हो ।
अखण्ड एक तत्वका, अनेकधा विचार हो ॥
बिगाड़ से समाज के, प्रबन्ध का सुधार हो ।
प्रवीण-पञ्चराज के, प्रपञ्च का प्रचार हो ॥१॥

पञ्च-प्रलाप २

(सोरठा)

जिन का पुण्य प्रताप, कोई कह सकता नहीं ।
महिमा अपनी आप, समझाते वे सब कहीं ॥१॥

* श्री राजर्षि-महाकवि-भर्तृहरि प्रणीत ।

पंचानन्द ३

(दोहा)

मनसा, वाचा, कर्मणा, महिमा से भरपूर ।
मेरे मान, महत्व से, गौरव रहै न दूर ॥१॥

मेरा महत्व ४

(रोलाछन्द)

मङ्गल—मूल—महेश, मुक्ति—दाता—शङ्कर है ।
शङ्कर का उपदेश, महाविद्या का घर है ॥
शङ्कर—जगदाधार, तुझे मैं जान चुका हूँ ।
उन्नति का अवतार, वेद को मान चुका हूँ ॥१॥

मेरा विशद-विचार, भारती का मन्दिर है ।
जिस में बन्ध-विकार, कल्पना सा अस्थिर है ॥
प्रतिभा का परिवार, उसी में खेल रहा है ।
अवनति को संसार, कूप में ठेल रहा है ॥२॥

रहै निरन्तर साथ, धर्म दश लक्षण धारी ।
पकड़ रहा है हाथ, सुकर्मोदय-हितकारी ॥
प्रति दिन पांचो याग, यथाविधि करताहूं मैं ।
सकल कामना त्याग, स्वतंत्र विचरताहूं मैं ॥३॥

सार हीन हठ-वाद, छोड़ आचरण सुधारे ।
छल, पाखण्ड, प्रमाद, विरोध-विलास विसारे ॥
मन में पाप-कलाप, कुमत का वास नहीं है ।
मदन, मोह, सन्ताप, कुलक्षण पास नहीं है ॥४॥

मुझ में ज्ञान, विराग, बुद्ध से भी बढ़ कर है ।
अविनाशी अनुराग, असीम अहिंसा पर है ॥
निरख न्याय की रीति, मुझे सब राम कहेंगे ।
परख अनूठी नीति, सुधी घनश्याम कहेंगे ॥५॥

रोग हीन बलवान, मनोहर मेरा तन है ।
निश्चल प्रेम--प्रधान, सत्य-सम्पादक मन है ॥
निर्मल-कर्म, विचार, वचन में दोष कहाँ है ।
मुझ सा धन्य, उदार, अन्य मृदु-घोष कहाँ है ॥६॥

वीत-राग, बिन रोष, एक मुनि-नायक पाया ।
निगुरा-पन का दोष, उसे गुरु मान मिटाया ॥
यद्यपि सिद्ध--स्वतंत्र, जगद्गुरु कहलाता हूँ ।
तो भी गुरु-मुख-मंत्र, मान मन बहलाता हूँ ॥७॥

दुःख-रूप सब अङ्ग, अविद्या के पहँचाने ।
सुख--सम्पन्न--प्रसङ्ग, अर्थ अपरा के जाने ॥
दोनों पर अधिकार, पराविद्या करती है ।
अखिलानन्द--अपार, एकता में भरती है ॥८॥

जिस की उलटी चाल, न सीधा सुमग दिखावे ।
जिसका कोप कराल, न मेल मिलाप सिखावे ॥
जो खल-दल को घोर, नरक में ठेल रही है ।
वह माया चहुँ ओर, खेल खुल खेल रही है ॥९॥

जो सब के गुण, कर्म, स्वभाव समस्त बतावे ।
जो ध्रुव-धर्म अधर्म, शुभाशुभ को समझावे ॥

जिस में जगदाकार, भद्र-सुख-भाव भरा है।
वही विविध—व्यापार, परक विद्या अपरा है ॥१०॥

जीव जिसे अपनाय, फूल सा खिल जाता है।
योग समाधि लगाय, ब्रह्म से मिल जाता है ॥
जिस में एक अनेक, भावना से रहता है।
उस को सत्य—विवेक, परा-विद्या कहता है ॥११॥

जिस में जड़ चैतन्य, सर्व—संघात समावे।
जिस अनन्य में अन्य, वस्तु का बोध न पावे ॥
जिस जी में रस उरू, योग का भर जावेगा।
वह बुध जीवन्मुक्त, मृत्यु से तर जावेगा ॥१२॥

बालक-पन में रांड़, अविद्या की जड़ काटी।
तरुण हुआ तो खाँड़, खीर अपरा की चाटी ॥
अब तो उत्तम लेख, परा के बाँच रहा हूँ।
बुढ़वा मङ्गल देख, जरा को जाँच रहा हूँ ॥१३॥

गाणपत्य-मत मान, रहे थे मेरे घर के।
मैं भी गुण गण गान, करे था लम्बोदर के ॥
शिशुता में वह बाल, बिलास न छोड़ा मैंने।
उमगा यौवन-काल, दम्भ-घट फोड़ा मैंने ॥१४॥

पढ़ ताथा दिन रात, महाश्रम का फल पाया।
निखिल तंत्र निष्णात. राजपण्डित कहलाया ॥
लालच का बल पाय, लगठ गढ़ तोड़ लिया था।
केवल गाल बजाय, घना धन जोड़ लिया था ॥१५॥

रहे प्रतारक सङ्ग, कपट की बेलि बढ़ाई।
मन भाये रस रङ्ग, मदन की रही चढ़ाई॥
भोजन, पान, विहार, यथारुचि करताथा मैं।
विधि, निषेध का भार, न सिर पै धरताथा मैं॥१६

बाल-विवाह—विशाल, जाल रच पाप कमाया।
ब्रह्मचर्य--व्रत—काल, वृथा विपरीत गमाया॥
अबला ने चुपचाप, उठाय पछाड़ा मुझ को।
बेटा जन कर बाप, बनाय बिगाड़ा मुझ को॥१७॥

प्यारे गुरु, लघु लोग, मरे घरबार बिसारे।
करनी के फल भोग, भोग सुरधाम सिधारे॥
बनिता ने जब हाथ, हटा कर छोड़ा मुझ को।
तब सुधार के साथ, सुमतिने जोड़ा मुझ को॥१८॥

पहले बालक चार, मृत्यु के मुख में डाले।
पिछले कौल-कुमार, कल्प-पादप से पाले॥
जिन को धन-भण्डार, युक्त घर पाया मेरा।
अब शिव ने संसार, कुटुम्ब बनाया मेरा॥१९॥

जिस जीवन की चाल, बुरा करती थी मेरा।
बीत गया वह काल, मिटा अन्धेर—अँधेरा॥
पिछले कर्म- कलाप, बताना ठीक नहीं है।
अपने मन को आप, सताना ठीक नहीं है॥२०॥

हिमगिरि-ज्ञानागार, धवल—मेधा—भुवनन्दा।
उस में चूवक मार, मार मन रहा न गन्दा॥

पातक-पुञ्ज पजार, पुण्य भर पूर किया है ।
ज्ञान प्रकाश पसार, मोह-तम दूर किया है ॥२१॥

जान लिया हठ-योग, अखण्ड-समाधि लगाना ।
कर्म-योग फल भोग, अमङ्गल-भूत भगाना ॥
क्या मुझ सा व्रत-सिद्ध, सुधारक और न होगा? ।
होगा पर सुप्रसिद्ध, सर्व-शिरमौर न होगा ॥२२॥

क्या करते प्रतिवाद, बचन सुन मेरे तीखे ।
गोतम, कृष्ण, कणाद, पतञ्जलि, व्यास सरीखे ॥
युक्ति हीन नर ग्रन्थ, न जीमें भर सकते हैं ।
तर्क-शत्रु मत, पन्थ, भला क्या कर सकते हैं ॥२३॥

बन कर मेरा जोड़, न ऊत अजान अड़ेगा ।
पण्डित भी भय छोड़, न टेक टिकाय लड़ेगा ॥
भिड़ा न भारत धर्म, मुखर मण्डल में कोई ।
दिखला सका सुकर्म, न वैदिक दल में कोई ॥२४॥

मैंने असुर, अजान, प्रमादी, पिशुन पछाड़े ।
हार गये अभिमान, भरे अवधूत-अखाड़े ॥
जिस की चपला-चाल, देश को दल सकती है ।
क्या उस दल की दाल, यहाँ भी गल सकती है? ॥२५॥

हेकड़ होड़ दवाय, उलझने को आते हैं ।
पर वे मुझे नवाय, न ऊँचा पद पाते हैं ॥

जिस का घोर घमण्ड, घरेलू घटजाता है ।
वह प्रचण्ड—उदण्ड, हठीला हटजाता है ॥२६॥

ठग मेरे विपरीत, बुरी बातें कहते हैं।
घरही में रणजीत, बने बैठे रहते हैं॥
मैं कलि-काल-विरुद्ध, प्रतापी आप हुआ हूँ।
पाकर जीवन-शुद्ध, निरा निष्पाप हुआ हूं॥२७॥

जोजड़ मति का कोष, न पूजेगा पग मेरे।
उस अजान के दोष, दिखा दूँगा बहुतेरे॥
जो मुझ को गुरु मान, प्रेम के साथ रहैगा।
उस पर मेरे मान, दान का हाथ रहैगा॥२८॥

मैं असीम-अभिमान, महा-महिमा के बल से।
डरता नहीं निदान, किसी प्रतियोगी-दल से॥
निगमागम का मर्म, विचार लिया करता हूँ।
तदनुसार सद्धर्म, प्रचार किया करता हूँ॥२९॥

तन में रही न व्याधि, न मन में आधि रही है।
रही न अन्य उपाधि, अनन्य-समाधि रही है॥
अनघ शिष्य को सर्व, सुधार सिखा सकता हूँ।
अपना गौरव-गर्व, अदम्य दिखा सकता हूँ॥३०

मुझ को साधु-समाज, शुद्ध-जीवन जानेगा।
सर्वोपरि-मुनि-राज, सिद्ध-मण्डल मानेगा॥
अपना नाम पवित्र, प्रसिद्ध किया है मैंने।
शुभ चरित्र का चित्र, दिखाय दिया है मैंने॥३१॥

यद्यपि लालच दूर, कर चुका हूँ मैं मन से।
तो भी मठ भरपूर, भरा रहता है धन से॥

छोड़ दिये सुख-भोग, विषय-रस रूखा हूँ मैं ।
दान करें सब लोग, सुयश-मधु भूखा हूँ मैं ॥३२॥

वेद और उपवेद, पढ़ा सकता हूँ पूरे ।
अङ्ग विधायक भेद, रहैंगे नहीं अधूरे ॥
तर्क-प्रवाह--तरङ्ग, विचित्र दिखादूँ सारे ।
पौराणिक-रस--रङ्ग, प्रसङ्ग सिखादूँ सारे ॥३३॥

ग्रन्थ बिना अनुवाद, किसी भाषा का रखलो ।
उस के रस का स्वाद, खड़ी बोली में चख लो ॥
जो अनुचर-अल्पज्ञ, न ज्यों का त्यों समझेगा ।
वह मुझ को सर्वज्ञ, कहो तो ? क्यों समझेगा ॥३४॥

यदि मैं व्यर्थ न जान, काम कविता से लेता ।
तो-तुक्कड़-कुल मान, दान क्या मुझे न देता? ॥
लेखक लेख निहार, लेखनी तोड़ चुके हैं ।
सम्पादक हिय हार, हेकड़ी छोड़ चुके हैं ॥३५॥

शिल्प रसायन सार, कहो जिसको सिखला दूँ ।
अभि नव-आविष्कार, अनोखे कर दिखला दूँ ॥
भूमि-यान, जल-यान, बिमान बना सकता हूँ ।
यंत्र सजीव समान, अजीव जना सकता हूँ ॥३६॥

गोल-भूमि पर डोल, डोल सब देश निहारे ।
खोल गगन की पोल, बेध कर परखे तारे ॥
लोक मिले चहुँ ओर, कहीं अवलम्ब न पाया ।
विधि ने जिस का छोर, छुआ वह लम्ब न पाया ॥३७॥

दे दे कर उपदेश, पुजा देशी मण्डल में ।
किया न चञ्चुप्रवेश, राज विद्रोही दल में ॥
अब सरिता के तीर, कुटी में बास करूँगा ।
त्याग अनित्य शरीर, काल का ग्रास करूँगा ॥३८॥

मेरा अनुचर-चक्र, छुटीली चाल चलेगा ।
रोंद रोंद कर वक्र, कुचालों को कुचलेगा ॥
मानव-दल की दूर, दुर्दशा करदेवेगा ।
भारत में भरपूर, भलाई भरदेवेगा ॥३९॥

सुनकर मेरी आज, अनूठी राम कहानी ।
धन्य धन्य मुनि राज, कहेंगे आदर दानी ॥
पण्डित परमोदार, प्रवीण प्रणाम करेंगे ।
लम्पट लण्ठ लबार, वृथा बदनाम करेंगे ॥४०॥

मन मोदक ५

(दोहा)

दूर करेंगे आलसी, मन मोदक से भूख ।
फूल फलेंगे चित्र के, सुन्दर नीरस रूख ॥ १ ॥

मेरा मनोराज्य ६

(सपुच्छ चतुष्पदी छन्द)

मङ्गल—मूल सच्चिदानन्द । हे शङ्कर ! स्वामी—सुख—कन्द ॥
देव रहो मेरे अनुकूल । दूर करो सारे भ्रम—शूल ॥
कर दानी, मनमानी ॥ १ ॥

व्याकुल करें न पातक रोग । जीवन भर भोगूँ सुख–भोग ॥
हो सदभ्युदय का जब अन्त । मुक्ति मिले तब हे भगवन्त ॥
कर दानी, मनमानी ॥ २ ॥

चेतनता न तजे विश्राम । मन मयूर नाचे निष्काम ॥
वाणी कहै वचन गम्भीर । खोटे कर्म न करे शरीर ॥
कर दानी, मनमानी ॥ ३ ॥

ध्रुव की भाँति पढ़ा दो वेद । ब्रह्म जीव में रहै न भेद ॥
करे निरङ्कुश मायावाद । मिटे अविद्याजन्य–प्रमाद ॥
कर दानी, मनमानी ॥ ४ ॥

जाति, पाँति, मत, पन्थ अनेक । दुर दुर छुआ छूत को छेक ॥
सब को फुरे विशुद्ध–विवेक । उपजे धर्म–सनातन एक ॥
कर दानी, मनमानी ॥ ५ ॥

जिस में सब की शक्ति समाय । मैं भी उस मत को अपनाय ॥
धार विश्व की विमल-बिभूति । सिद्ध कहाय करूँ करतूति ॥
कर दानी, मनमानी ॥ ६ ॥

हे प्रभु ! द्वार दया का खोल । कर दो दान मुझे भूगोल ॥
सागर सारे देश अनेक । सब का ईश बनूँ मैं एक ॥
कर दानी, मनमानी ॥ ७ ॥

रहैं सहायक पाँचो भूत । बार बार बरसें जीमूत ॥
बिजली करे अनूठे काम । फलें सिद्धियों के परिणाम ॥
कर दानी, मनमानी ॥ ८ ॥

कर कुबेर को चकनाचूर । धन से कोष भरूँ भरपूर ॥
कमला कर मेरे घर बास । जाय न अपने पति के पास ॥
कर दानी, मनमानी ॥ ९ ॥

भाँति भाँति के पत्तन, ग्राम। बन जावें सारे सुख-धाम ॥
सब को मिले मेल की लूट। मिट जावे आपस की फूट ॥
कर दानी, मनमानी ॥ १० ॥

कुल्या, कूल बहैं अविराम। फूल फलें कानन, आराम ॥
प्राणी पाय शुद्ध जल वायु। भय तज भोगें पूरी आयु ॥
कर दानी, मनमानी ॥ ११ ॥

दैशिक-सम्मेलन के हेतु। बँधें सिन्धु, नदियों के सेतु ॥
जिन के द्वारा अन्तर त्याग। मिलें समस्त भूमि के भाग ॥
कर दानी, मनमानी ॥ १२ ॥

गगन-गोल में उड़ें विमान। जल में तरें घने जलयान ॥
धरणीतल पर दौड़ें रेल। चलें अन्य वाहन पँचमेल ॥
कर दानी, मनमानी ॥ १३ ॥

बने राजपथ चारों ओर। चलें बटोही मिलें न चोर ॥
सुन्दर पादप रोकें धूप। दान करें जल बापी, कूप ॥
कर दानी, मनमानी ॥ १४ ॥

फलें सदुद्यम के व्यवहार। शिल्प रसायन बढ़ें अपार ॥
पौरुष-रवि का पाय प्रकाश। उन्नति नलिनी करे विकाश ॥
कर दानी, मनमानी ॥ १५ ॥

लगे भूमि पर स्वल्प लगान। जल पावें बिन मोल किसान ॥
उपजें विविध भाँति के माल। पड़े न महँगी और अकाल ॥
कर दानी, मनमानी ॥ १६ ॥

आयुर्वेद-विहित कविराज। सादर सब का करें इलाज ॥
बटें सदाव्रत रुकें न हाथ। मरें न भिक्षुक, दीन, अनाथ ॥
कर दानी, मनमानी ॥ १७ ॥

दो दो विद्यालय सब ठौर । खोलें अध्यापक सिरमौर ॥
करें यथा विधि विद्या-दान । उपजावें विदुषी, विद्वान ॥
कर दानी मनमानी ॥ १८ ॥

साङ्ग वेद, दर्शन, इतिहास । ललित काव्य, साहित्य-विलास ॥
गणित, नीति, वैद्यक, संगीत । पढ़ें प्रजा-जन बनें विनीत ॥
कर दानी, मनमानी ॥ १९ ॥

सीखें सैनिक शस्त्र-प्रयोग । वीर बनें साधारण लोग ॥
धारें टेक टिकाय कृपाण । वारें धर्मराज पर प्राण ॥
कर दानी, मनमानी ॥ २० ॥

अखिल बोलियों के भंडार । विद्या के रस-रङ्ग-विहार ॥
भुवन--भारती के शृङ्गार । रहैं सुरक्षित ग्रन्थागार ॥
कर दानी, मनमानी ॥ २१ ॥

निकलें नये नये अखबार । पाठक पढ़ें विचार विचार ॥
सब के कर्म, कुयोग, सुयोग । प्रकट करें सम्पादक लोग ॥
कर दानी, मनमानी ॥ २२ ॥

जो सदर्थ का सार निचोड़ । परखें पक्षपात को छोड़ ॥
शुद्ध--न्याय को करें प्रसिद्ध । बने समालोचक वे सिद्ध ॥
कर दानी, मनमानी ॥ २३ ॥

जिन के पास न राग, न रोष । सत्य कहैं सब के गुण, दोष ॥
ऐसे भूतल--तिलक-प्रधान । विधि निषेध का करें विधान ॥
कर दानी, मनमानी ॥ २४ ॥

युक्तिवाद--पटु-निर्भय वीर । धीर, महा-मति अति गम्भीर ॥
कर्म-प्रवीण, कुलीन सपूत । परम--साहसी विचरें दूत ॥
कर दानी, मनमानी ॥ २५ ॥

सम्वित्सागर परम सुजान । नीति-विशारद न्याय—निधान ॥
पर-हित कारी सत्कवि राज । सब से हो संगठित समाज ॥
कर दानी, मनमानी ॥ २६ ॥

न्यायाधीश बड़े पद पाय । करें ठीक मारालिक—न्याय ॥
चाकर चलें न टेढ़ी चाल । खाय न चक्र घूँस का माल ॥
कर दानी, मनमानी ॥ २७ ॥

लड़ें न ऊत अशिक्षित लोग । चलें न जाल भरे अभियोग ॥
प्रजा—पुरोहित वीर वकील । बने न न्याय-विपिन के भील ॥
कर दानी, मनमानी ॥ २८ ॥

हेल मेल का बढ़े प्रचार । तजें प्रतारक अत्याचार ॥
सीख राज—पद्धति के मंत्र । प्रजा रहै सानन्द, स्वतंत्र ॥
कर दानी, मनमानी ॥ २९ ॥

करे न कोप महासुर—मोह । उठे न अधम राज—विद्रोह ॥
चलें न छल-भट के नाराच । पिये न रक्त प्रपञ्च-पिशाच ॥
कर दानी मनमानी ॥ ३० ॥

रहै न कोई भी परतंत्र । बने न नीचों के षड्यंत्र ॥
बैर, फूल की लगे न लाग । मार काट की जले न आग ॥
कर दानी, मनमानी ॥ ३१ ॥

चतुरङ्गिनी चमू कर कोप । करदे खल—मण्डल का लोप ॥
गरजें धीर, वीर घन-घोर । भागें प्रतिभट, वञ्चक, चोर ॥
कर दानी, मनमानी ॥ ३२ ॥

पकड़ें अस्त्र शस्त्र रणजीत । बाधक दुष्ट रहैं भयभीत ॥
जो कर सकें पराभव घोर । बने न वैसे करुणा—कठोर ॥
कर दानी, मनमानी ॥ ३३ ॥

राज–कर्म–पद्धति की चूक । जो कवि कह डाले दो टूक ॥
उस को मेरा चक्र–प्रचण्ड । छल से कभी न देवे दण्ड ॥
कर दानी, मनमानी ॥ ३४ ॥

सुख से एक बटोरे माल । एक रहै दुखिया कंगाल ॥
अपना कर ऐसे दो देश । मैं न कहाऊँ अन्ध–नरेश ॥
कर दानी, मनमानी ॥ ३५ ॥

जिस आलस्य-दास के पास । दीर्घसूत्रता करे बिलास ॥
ऐसे दल का दृश्य निहार । दूर रहैं प्यारे–परिवार ॥
कर दानी, मनमानी ॥ ३६ ॥

चाटुकार, बिट, षंढ, सपाट, । भांड़, भगतिये, भडुआ, भाट, ॥
पाखंडी, खल, पिशुन, कलाल, । सब का संग तजें कुल-पाल ॥
करदानी मनमानी ॥ ३७ ॥

ज्वारी, जार, बधिक, ठग, चोर, । अधम, आततायी, कुलबोर ॥
लोलुप, लम्पट, लंठ, लबार, । बढ़ें न ऐसे असुर–असार ॥
करदानी, मनमानी ॥ ३८ ॥

हिंसक लोग कृपालु कहाय, । शुद्ध निरामिष भोजन पाय ॥
करें दुग्ध, घृत, से तन पीन, । कभी न मारें खग, मृग, मीन ॥
करदानी, मनमानी ॥ ३९ ॥

करे कुमारी जिस की चाह । रचे उसी के साथ विवाह ॥
बँधे न बारे बर के साथ । बिके न बूढ़े नर के हाथ ॥
करदानी, मनमानी ॥ ४० ॥

धरें न मौर धनी बहु बार । रहैं न बित्त बिहीन कुमार ॥
करे न बिधवा-वृन्द बिलाप । बढ़े न गर्भ–पतन का पाप ॥
करदानी, मनमानी ॥ ४१ ॥

ठगें न कुलटा के रस-रंग। करें न मादकता मतिभंग॥
मायिक-मत की लगे न छूत। कायर करें न कल्पित-भूत॥
करदानी, मनमानी॥ ४२॥

८ मात, पिता, गुरु, भूपति, मित्र। सिद्ध-प्रसिद्ध, पवित्र-चरित्र,॥
गण्यगुणी--जन, धन्य-धनेश,। सब का मान करें सब देश॥
करदानी, मनमानी॥ ४३॥

ग्रन्थकार, कवि, कोविद, छात्र,। अध्यापक, भट, साधु, सुपात्र,॥
चित्रकार, गायक, नट, धार,। सब को मिला करें उपहार॥
करदानी, मनमानी॥ ४४॥

जो जगदम्बा को उर धार। करें अलौकिक--आविष्कार॥
उन देवों के दर्शन पाय। पूजा करूँ किरीट झुकाय॥
करदानी, मनमानी॥ ४५॥

जो निशङ्क नामी कविराज। आय निहारे राज-समाज॥
करे प्रबन्धों के गुण--गान। वह पावे दरबारी--दान॥
करदानी, मनमानी॥ ४६॥

घटे न मङ्गल, पुण्य-प्रताप। बढ़े न पापजन्य--परिताप॥
भाव सत्ययुग का भर जाय। कलियुग की नानी मर जाय॥
करदानी, मनमानी॥ ४७॥

यों सामाजिक--धर्म पसार। करूँ प्रजा पर पूरा प्यार॥
पकड़े न्याय नीति का हाथ। विचरे दण्ड दया के साथ॥
करदानी, मनमानी॥ ४८॥

नानाविध विभाग, संयोग। दिव्य, दृश्य देखें सब लोग॥
धरें सुकृति का सीता नाम। समझें मुझे दूसरा राम॥
करदानी, मनमानी॥ ४९॥

क्या बकवाद किया बेजोड़ । बस होली सिड़ियों की होड़ ॥
धार मन्दभागी-मुख मौन । तेरी सनक सुनेगा कौन ॥
करदानी, मनमानी ॥ ५० ॥

पाया घोर-नरक में बास । बीते हाय न हाय ! पचास ॥
आ पहुंचा है अन्तिम काल । क्या होगा बन कर भूपाल ॥
करदानी, मनमानी ॥ ५१ ॥

अब तो सब से नाता तोड़ । बन्धन--रूप दुराशा छोड़ ॥
रे ! मन ज्ञान-सिन्धु के मीन । हो जा परमतत्व में लीन ॥
करदानी, मनमानी ॥ ५२ ॥

पञ्चराजकीकृष्णोपासना ७

(दोहा)

भगवद्गीता में मिला, सदुपदेश का सार ।
क्यों न कहैं श्रीकृष्ण को, गौरव का अवतार ॥ १ ॥

वेदान्त–विलास ८

+(गीत)

बांके विहारी की बाजी बँसुरिया ॥टेक॥

बंशी की तानें सुने सारी सखियाँ, साड़ी सजें धौरी, काली सिंदुरिया ।
बांके विहारी की बाजी बँसुरिया ॥

देखे दिखावे जिसे रास रसिया, फोड़े उसी की रसीली कमुरिया ॥
बाँके विहारी की बाजी बँसुरिया ॥

+ इस गीत के शब्दोंपर विशेष ध्यान न देकर केवल भावार्थ । पर गहरी गवेषणापूर्वक विचार कीजिये । वेदान्त है । थोरे की बड़ न समझिये (पञ्चराज) ।

सोवे न जागे न देखे न सपना, प्यारी की चौथी अवस्था है तुरिया।
बाँके बिहारी की बाजी बँसुरिया ॥
माया के धागे में मन के पिरोये, न्यारा नहीं कोई माला से गुरिया ॥
बाँके बिहारी की बाजी बँसुरिया ॥
सत्ता पखुरियों में फूलों की फूली, फूलों की सत्ता में पाई पखुरिया।
बाँके बिहारी की बाजी बँसुरिया ॥
राजा कहाता है जो सारे ब्रज का, ऊधो! उसे कैसे माने मथुरिया ॥
बाँके बिहारी की बाजी बँसुरिया ॥
टेढ़ी न भावे त्रिभंगी ललन को, सीधी करी शंकरा सी कुबरिया।
बाँके बिहारी की बाजी बँसुरिया ॥१॥

योगीश्वर-कृष्णचंद्र ९

(दोहा)

गीता में जिन के सुने, परम ज्ञान के गीत।
क्या वे कृष्ण समाज से, चलते थे विपरीत? ॥१॥

प्रेमीपञ्च का प्रेमोद्गार १०

(गीत)

अब तो बने द्वारिकाधीश,
श्री जगदीश कहानेवाले ॥टेक॥
सर्वाधार, विशुद्ध, अकाय, उतरे बन्दीगृह में आय,
जन्मे पुत्र--भाव अपनाय, ऊँचा पितु-पद पानेवाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहानेवाले ॥
निर्गुण-सत्ता को न बिसार, प्रकटे दिव्य गुणों को धार,
बिचरे नर-लीला बिस्तार, उमगे खेल खिलानेवाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहानेवाले ॥

पुण्यश्लोक, अखण्ड-प्रताप, करते प्यारे—कर्म-कलाप,
नाचे ब्रज-मण्डल में आप, सब को नाच नचानेवाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहानेवाले ॥
जितने उठते डांकू चोर, उन को देते दण्ड-कठोर,
देखें आप न अपनी ओर, मांखन, छाछ चुरानेवाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहानेवाले ॥
विजयी जाने सब संसार, जड़धी-जरासन्धि से हार,
भागे भूल विजय-व्यापार, रण में पीठ दिखानेवाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहानेवाले ॥
बनिता रहीं स्वकीया सङ्ग, परखे परकीया के अङ्ग,
मारा मार किया रस-भङ्ग, रीझे रसिक रिझानेवाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहानेवाले ॥
प्यारे ब्रज का बास विहाय, प्रभु सौराष्ट्र-द्वीप में जाय,
महिमा महा-राजों की पाय, चमके धेनु चरानेवाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहानेवाले ॥
जीता जगती-खण्ड विशाल, दीना नाथ नहीं अब ग्वाल,
निर्भय बन बैठे भूपाल, बन में बेणु बजानेवाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहानेवाले ॥
आकर मिला सुदामा यार, पूजा कर स्वागत सत्कार,
दानी बने दयालु—उदार, तण्डुल—चाब चबानेवाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहानेवाले ॥
सोंपा अर्जुन को उपदेश, बण्टाढार किया सब देश,
कतरे सर्व-नाश के केश, जय सद्धर्म बढ़ानेवाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहानेवाले ॥
कल्पित भेद—हीन के भेद, यद्यपि नहीं बताते वेद,

तोभी मिलते अन्तरछेद, सब में श्याम समानेवाले ।
अ० ब० द्वा० श्री० कहानेवाले ॥

प्यारे भावुक--भक्त सुजान, आओ करो प्रेम-रस पान,
मूँदे मन्दिर में भगवान, "शङ्कर" भोग लगानेवाले ॥
अ० ब० द्वा० श्री० कहानेवाले ॥

कृष्णोत्कर्ष ११

(दोहा)

वीर न होगा दूसरा, श्री ब्रज- राज समान ।
आल्हा ऊदल आदि के, कौन करे गुण-गान ॥१॥

आर्य्य पञ्चकी आल्हा १२

(वीर-छन्द)

हे! वैदिक--दल के नरनामी, हिन्दू-मण्डल के करतार ।
स्वामि सनातन-सत्य-धर्म के, भक्ति-भावना के भरतार ॥
सुत वसुदेव, देवकीजी के, नन्द,यशोदाके प्रिय-लाल ।
चाहक-चतुर रुक्मिणी जी के, रसिक-राधिका के गोपाल ॥१॥

मुक्त,अकाय बने तन-धारी, श्रीपति के पूरे अवतार ।
सर्व--सुधार किया भारत का, कर सब शूरों का संहार ॥
ऊँचे अगुआ यादव--कुल के, वीर अहीरों के सिरमौर ।
दुविधा दूर करो द्वापर की, ढालो रङ्ग ढङ्ग अब और ॥२॥

भड़क भुला दो भूत काल की, सजिये वर्तमान के साज ।
फैशन फेर इंडिया भर के, गोरे--गाड बनो ब्रजराज ॥
गौर-वर्ण वृषभानु-सुता का, काढ़ो, काले तन पर तोप ।
नाथ ! उतारो मोरमुकुट को, सिर पै सजो साहिबी टोप ॥३॥

पौडर, चन्दन पोंछ, लपेटो, आनन की श्री ज्योति जगाय।
अञ्जन अँखियों में मत आँजो, आला ऐनक लेहु लगाय ॥
रव-धर कानों में लटका लो, कुण्डल काढ़, मेकराफून।
तज पीताम्बर, कम्बल काला, डाँटो कोट और पतलून ॥४॥

पटक पादुका, पहिनो प्यारे, बूट इटाली का लुक़दार।
डालो डबलवाच पाकट में, चमकें चेन कंचनी चार ॥
रखदो गाँठ गठीली लकुटी, छाता, बेंत बग़ल में मार।
मुरली तोड़ मरोड़ बजाओ, बाँकी-बिगुल सुने संसार ॥५॥

फरिया चीर फाड़ कुबरी को, पहिनालो पँचरंगी गौन।
अबलक़ लेडी लाल तिहारी, कहिये ? और बनेगी कौन ॥
मुँदना नहीं किसी मन्दिर में, काटो होटल में दिन रात।
पर नजखौआ ताड़ न जावें, बढ़िया खान, पान की बात ॥६॥

बैनतेय तज व्योम यान पै, करिये चारों ओर बिहार।
फक फक फूँ फूँ फूँको चुरटें, उगलें गाल धुआँ की धार ॥
यों उत्तम पदवी फटकारो, माधो मिस्टर नाम धराय।
बाँटो पदक नई प्रभुता के, भारत जाति-भक्त हो जाय ॥७॥

कह दो सुबुध-विश्वकर्मा से, रच दे ऐसा हाल-बिशाल।
जिस पै गरमी, नरमी वारे, कांगरेस-कुल की पण्डाल ॥
सुर, नर, मुनि, डेलीगेटों को, देकर नोटिस, टेलीग्राम।
नाथ ! बुलालो, उस मण्डप में, बैठें जेंटिलमैंन तमाम ॥८॥

उमगें सभ्य-सभासद सारे, सर्वोपरि-यश पावें आप।
दर्शक-रसिक तालियाँ पीटें, नाचें मंगल, मेल, मिलाप ॥

जो जन विविध बोलियाँ बोले, टर्रीली गिट पिट को छोड़ ।
रोको ! उस गोबरगणेश को, करे न सर-भाषा की होड़ ॥९॥

वेद, पुराणों पर करते हैं, आरज, हिन्दू, वाद, विवाद ।
कान लगा कर सुनलो स्वामी, सब के कूट-कटीले नाद ॥
दोनों के अभिलषित मतों पै, बीच सभा में करो विचार ।
सत्य, झूँठ किस का कितना है, ठीक बता दो न्याय पसार ॥१०॥

जगदीश्वर ने वेद दिये हैं, यदि विद्या बल के भंडार ।
उन के ज्ञाता हाय न करते, तो भी अभिनव आविष्कार ॥
समझा दो वैदिक सुजनों को, उत्तम कर्म करें निष्काम ।
जिन के द्वारा सब सुख पावैं, जीवित रहैं कल्प लों नाम ॥११॥

निपट पुराणों के अनुगामी, ऊलें निरखो इनकी ओर ।
निडर आप को भी कहते हैं, नर्त्तक, जार, भगोड़ा, चोर ॥
प्रतिदिन पाठ करें गीताके, गिनते रहैं रावरे नाम ।
पर हा ! मनमौजी मतवाले, बनते नहीं धर्म के धाम ॥१२॥

कलुष, कलंक कमाते हैं जो, उन को देते हैं फल चार ।
कहिये?इन तीरथ देवों के, क्यों न छीनते हो अधिकार ॥
यों न किया तो डर न सकेंगे, डाँकू उदरासुर के दास ।
अधम, अनारी, नीच, करेंगे, मनमाने सानन्द-विहार ॥१३॥

वैदिक, पौराणिक पुरुषों में, टिके टिकाऊ मेल, मिलाप ।
गैल गहैं अगले अगुओं की, इतनी कृपा कीजिये आप ॥
जिस विधि से उन्नत हो बैठे, यूरुप, अमरीका, जापान ।
विद्या, बल, प्रभुता, उन की सी, दो भारत को भी भगवान ॥१४॥

युक्ति-वाद से निपट निराली, सुनलो वीर अनूठी! बात।
इस का भेद न पाया अबलों, है अवितर्क-विश्व-विख्यात ॥
योग बिना क्वारी मरियम ने, कैसे जने मसीह सपूत।
कैसे शकुलक़मर कहाया, छाया रहित खुदा का दूत ॥१५॥

इस घटना की सम्भवता को, कहिये तर्क-तुला पै तोल।
गड़बड़ है तो खोल दीजिये, ढिल्लड़ ढोंग-ढोल की पोल ॥
यह प्रस्ताव और भी सुनलो, उत्तर ठीक बता दो तीन।
किस प्रकार से फल देते हैं, केवल कर्म चेतना-हीन ॥१६॥

देव! आदि के अधिवेशन में, पूरे करना इतने काम।
हिप हिप हुर्रा के सुनते ही, खाना टिफ़न पाय आराम ॥
झंझट, झगड़े मतवालों के, जानो सब के खण्ड-बिभाग।
तीन, चार दिन की बैठक में, कर दो संशोधन बेलाग ॥१७॥

बनिये गौर श्यामसुन्दर जी, ताक रहे हैं दर्शक-दीन।
हम को नहीं हँसाना बन के, बाघ, घितुराडी, कछुआ, मीन।
धार सामयिक-नेतापन को, दूर करो भूतल का भार।
निष्कलङ्क-अवतार कहैंगे, "शङ्कर" सेवक बारम्बार ॥१८॥

पञ्च परिचय १३

(दोहा)

बैठे सण्ठ-समाज में, पाकर उन्नत-मञ्च।
यों पुकारते हैं सुनो, परम-प्रतापी पञ्च ॥ १ ॥

पञ्च पुकार १४

(पञ्चास्य-छन्द)

पञ्चशरघ्न, पुरघ्न, पिनाकी, पञ्चानन, पशुराज ।
पाँच प्रचण्ड नाम शङ्कर के, पञ्चनाद इव आज ॥
उछल ऊँचा उच्चारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ १ ॥

बुध—विद्यावारिधि गुरु-ज्ञानी, मेरे वासर—सूर ।
उन का सा अभिमानी मन है, मेरा भी भरपूर ॥
उलझने को झिगारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ २ ॥

फागुन का फल फाग फबीला, फूला ऐप्रिल-फूल ।
दो गुण गटक दुलत्ती मारूँ, हाँकूँ अन्ध-उसूल ॥
तीसरी आँख उघारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ ३ ॥

चुस्त पजामा, ढिलमिल जामा, सजे साहिबी-टोप ।
ताकें तसलीमुल-फ़ैशन को, मियाँ, पुजारी, पोप ॥
नक्क ओछी न उतारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ ४ ॥

चूनरि चीर, फाड़दी फरिया, पहँना लाया गौन ।
लेडी-पञ्च ब्लैक-दुलहिन को, दाद न देगा कौन ॥
प्रिया के पैर पखारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ ५ ॥

सुन सुन मेरे शब्द, बोलियाँ, चौंक पड़ें चण्डूल ।
पर जो हिन्दू कथन करेगा, हिन्दी के प्रतिकूल ॥

उसे धमका धिक्कारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ ६ ॥

इँगलिश-डाग, नागरी-गेंडा, उरदू–दुम्बा तीन ।
निकलें पेपर, पत्र, रिसाले, मेरे रहैं अधीन ॥
केहरी सा धदकारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥७॥

उरदू के बेनुक्क़ रक़मचे, लिक्खूँ क़ाबिले दीद ।
बीनी खुद बुरीद को पढ़लो, बेटी जोद यज़ीद ॥
चुनीदा नज्म गुज़ारूगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥८॥

जिस मण्डल में मतवालों का, उफनेगा उन्माद ।
मैं भी उस दल में करने को, बेहूदा बकबाद ॥
बिना पाथेय पधारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥९॥

जिस के तर्क-जलधि में डूबे, मत,पन्थों के पोत ।
उस के सत्यामृतप्रवाह का, क्यों न बहैगा सोत ॥
बनूँगा मीन मझारूँगा ।
किसी से कभीन हारूँगा ॥१०॥

भूला गिरिजा,गिरिजापति को, मैं गिरजा में जाय ।
समझा सद्गुण गाड–पुत्र के, गोरी प्रभुता पाय ॥
श्याम कुल को उद्धारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥११॥

फड़क फूट कर फुट्टैलों में, फूल फली है फूट ।
भेद–भक्त भट–मण्डल मेरा, क्यों न करेगा लूट ॥

पुजे पूजा न बिसारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥१२॥

ठेके पर लेकर वैतरणी, देकर डाढ़ी मूँछ ।
वाटर-बायसिकिल के द्वारा, बिना गाय की पूँछ ॥
मरों को पार उतारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥१३॥

जाति पाँति के बिकटजाल में, जूझें फँसे गमार ।
मैं अब सबको सुलझा दूँगा, कर के एकाकार ॥
महा-सद्धर्म प्रचारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥१४॥

रसिक रहूँगा राजभक्ति का, बैठ प्रजा की ओर ।
बाँध बधिक-बिद्रोही-दल को, दूँगा दण्ड कठोर ॥
खटकतों को सँहारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥१५॥

गोरे गुरु-गण की ख़ातिर में, ख़रच करूँगा दाम ।
दमकेगा दुमदार-सितारा, बन के जुगनू-नाम ॥
ख़िताबों को फटकारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ १६ ॥

लण्डन में कर बास बना हूँ, बैरिस्टर कर पास ।
घेर मुवक्किल घटिया से भी, लूँगा नक़द पचास ॥
बड़प्पन को बिस्तारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ १७ ॥

जग में जीवन भर भोगूँगा, मन माने सुख-भोग ।
परम-रङ्क महँगी के मारे, प्राण तजें लघु-लोग ॥

उन्हें तोभी न निहारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ १८ ॥

यदि आगे अब से भी बढ़िया, दारुण पड़े दुकाल ।
तो जड़ जमजावे उन्नति की, थलके तोंद-विशाल ॥
प्रतिष्ठा के, फल धारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ १६ ॥

प्रति मुद्रा पर एक टका से, कम न करूँगा ब्याज ।
धन कुबेर का मान मिटादूँ, लाद ब्याज पर त्याज ॥
ग़रीबों के घर जारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ २० ॥

पढ़ बन्देमातरम करेंगे, सोदा सब दल्लाल ।
तिगुनी दर लेकर बेचूँगा, निरा बिदेशी-माल ॥
स्वदेशी-जाल पसारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ २१ ॥

इतने पुतली-घर खोलूँगा, बन कर मालामाल ।
जिन को पूरी मिल न सकेगी, पामर-कुल की खाल ॥
दही में मूसल मारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ २२ ॥

प्रथम महत्ता के मन्दिर पै, सुयश-पताका गाढ़ ।
फिर फूटे लघुता के घर में, दबक दिवाला काढ़ ॥
रक़म औरों की मारूँगा ॥
किसी से कभी न हारूँगा ॥ २३ ॥

मदिरा, खजुरी, भंग, कसूमा, आसव, सर्व समान ।
इन पवित्र मादकद्रव्यों का, कर पंचामृत पान ॥

नशीली बात विचारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ २४ ॥

जिस में वीरों की अभिरुचि का, चल न सकेगा खोज ।
ऐसा कहीं मिला यदि मुझको, कराटक-कुल का भोज ॥
मुखानन्दी न जुठारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ २५ ॥

जिसने निगला धन्वन्तरि के, अमृत-कुम्भ का मोल ।
उस मदमाती डाक्टरी की, बढ़िया बोतल खोल ॥
पिऊँगा जीवन वारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ २६ ॥

जो जगदीश बनादे मुझको, अनथक थानेदार ।
तो छल छोड़ धर्म सागर में, गहरी चूबक मार ॥
अकड़ के अङ्ग निखारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ २७ ॥

यद्यपि मुझको नहीं सुहाते, वैदिक-दल के कर्म ।
ठाठ बदलता हूँ अब तो भी, धार सनातन-धर्म ॥
इसी से जन्म सुधारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ २८ ॥

पास करूँगा कुलपद्धति के, परमोचित--प्रस्ताव ।
हां पर कभी नहीं बदलूँगा, मैं गुण, कर्म, स्वभाव ॥
गपोड़े मार बगारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ २९ ॥

बालक उपजेंगे नियोग की, अब न रुकेगी राह ।
अक्षत-योनि बाल-विधवा से, अबस करूँगा ब्याह ॥

पके पेठे न बनारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ ३० ॥

नई चाल के गुरु-कुल खोलूँ, फाँस फ़ीस के फन्द ।
निरख परख दाता पावेंगे, दिव्य—दर्शनानन्द ॥
पुरानी रीति बिसारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ ३१ ॥

अगुआ बनूं जेल में पड़ के, निकलूँ पिण्ड छुड़ाय ।
बैठ बैठ कर नर-यानों पै, पटपट— पूजा पाय ॥
हुमक हूँ हूँ हुंकारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ ३२ ॥

गरजूँगा क़ौमीमजलिस में, गरमी नर्मी पाय ।
सूरत नहीं बिगड़ने दूँगा, लात लीतड़े खाय ॥
लीडरों को ललकारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ ३३ ॥

यदि चौमुख बाबा की बिटिया, बनी रही अनुकूल ।
तो तुक्कड़ समझेंगे मुझ को, कवितारण्य—बबूल ॥
कटीला पाल पसारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ ३४ ॥

आठ बटा अट्ठावन पढ़लो, पाठक पञ्च-पुकार ।
जो मृदु-मुख लिक्खाड़ लिखेगा, इस का उपसंहार ॥
उसे दे दाद दुलारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥ ३५ ॥
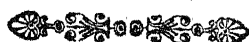
धनी से निर्धन १५

(दोहा)

काम रुखाई से पड़ा, सूख गई सब तीत ।
घेरा घोर-दरिद्र ने, दैव हुआ बिपरीत ॥१॥

रंकरोदन १६

(रौला छन्द)

क्या शङ्कर प्रतिकूल, काल का अन्त न होगा ।
क्या शुभ-गति से मेल, मृत्यु पर्य्यन्त न होगा ॥
क्या अब दुःख दरिद्र, हमारा दूर न होगा ।
क्या अनुचित दुर्दैव, कोप कर्पूर न होगा ॥१॥

हो कर मालामाल, पिता ने नाम किया था ।
मैंने उन के साथ, न कोई काम किया था ॥
विद्या का भरपूर, इष्ट अभ्यास किया था ।
पर औरों की भाँति, न कोई पास किया था ॥२॥

उद्यम की दिन रात, कमान चढ़ी रहती थी ।
यश के सिर पै वर्णा, उपाधि मढ़ी रहती थी ॥
कुल-गौरव की ज्योति, अखण्ड जगी रहती थी ।
घर पै भिक्षुक—भीड़, सदैव लगी रहती थी ॥३॥

जीवन का फल शुद्ध, पूज्य-पितु पाय चुके थे ।
कर पूरे सब काम, कुलीन कहाय चुके थे ।
सुन्दर स्वर्ग समान, बिलास विसार चुके थे ।
हा ! हम उन का अन्त, अनन्त निहार चुके थे ॥४॥

बाँध जनक की पाग, बना मुखिया घर का मैं
केवल परमाधार, रहा कुनबे भर का मैं ॥
सुख से पहली भाँति, निरङ्कुश रहता था मैं ।
घर का देख बिगाड़, न कुछ भी कहता था मैं ॥५॥

जिनका सञ्चित कोश, खिला कर खाया मैं ने ।
कर के उन की होड़, न द्रव्य कमाया मैं ने ॥
अटका हेकड़ ह्रास, नहीं पहँचाना मैं ने ।
घटती का परिणाम, कठोर न जाना मैं ने ॥६॥

चेते चाकर चोर, पुरानी बान बिगाड़ी ।
दिया दिवाला काढ़, बनी दूकान बिगाड़ी ॥
आधे दाम चुकाय, बड़ों की बात बिगाड़ी ।
छोड़ धर्म का पन्थ, प्रथा--विख्यात बिगाड़ी ॥७॥

अटके डिगरीदार, दया कर दाम न छोड़े ।
छीन लिये धन धाम, ग्राम अभिराम न छोड़े ॥
वासन बचा न एक' विभूषण वस्त्र न छोड़े ।
नाम रहा निरुपाधि, पुलिस ने शस्त्र न छोड़े ॥८॥

न्याय सदन में जाय, दरिद्र कहाय चुका हूं ।
सब देकर इन्साल, वेंएट पद पाय चुका हूं ॥
अपने घर की आप, विभूति उड़ाय चुका हूं ।
पर संकट से हाय, न पिण्ड छुड़ाय चुका हूं ॥९॥

बैठ रहे मुख मोड़, निरन्तर आने वाले ।
सुनते नहीं प्रणाम, लूट कर खाने वाले ॥

उगल रहे दुर्वाद, बड़ाई करने वाले।
लड़ते हैं बिन बात, अड़ी पै मरने वाले ॥१०॥

कविता सुने न लोग, न नामी कवि कहते हैं।
अब न विज्ञ, विज्ञान, व्योम का रवि कहते हैं॥
धर्म धुरन्धर धीर, न बन्दी जन कहते हैं।
मुझ को सब कंगाल, धनी निर्धन कहते हैं॥११॥

हाय बिरद विख्यात, आज बिपरीत हुआ है।
मन विशुद्ध निश्शङ्क, महा भयभीत हुआ है॥
कुल दरिद्र की मार, सहै रस भङ्ग हुआ है।
जीवन का मग देख, सदाशिव तङ्ग हुआ है॥१२॥

प्रतिभा को प्रतिवाद, प्रचण्ड पछाड़ चुका है।
आदर को अपमान, कलङ्क लताड़ चुका है॥
पौरुष का सिर नीच, निरुद्यम फोड़ चुका है।
विशद-हर्ष का रक्त, विषाद निचोड़ चुका है॥१३॥

दरसे देश उदास, जाति अनुकूल नहीं हैं।
शत्रु करें उपहास, मित्र सुख--मूल नहीं हैं॥
अनुचित नातेदार, कहैं कुछ मेल नहीं हैं।
रूँठ रहे सब लोग, सुमति का खेल नहीं हैं॥१४॥

मङ्गल का रिपु घोर, अमङ्गल घेर रहा है।
विषम-त्रास के बीज, विनाश बखेर रहा है॥
दीन-मलीन--कुटुम्ब, कुगति को कोस रहा है।
सब के कण्ठ अदम्य, दरिद्र मसोस रहा है॥१५॥

दुखड़ों की भरमार, यहां सुख साज नहीं है ।
किस का गोरस, भात, मुठी भर नाज नहीं है ॥
भटकें चिथड़े धार, धुले पट पास नहीं है ।
कुनबे भर में कौन, अधीर, उदास नहीं है ॥१६॥

मक्की, मटरा, मोठ, भुनाय चबा लेते हैं ।
अथवा रूखे रोट, नमक से खालेते हैं ॥
सत्तू, दलिया, दाल, पेट में भर लेते हैं ।
गाजर, मूली पाय, कलेवा कर लेते हैं ॥१७॥

बालक चोखे खान, पान को अड़ जाते हैं ।
खेल खिलोने देख, पिछाड़ी पड़ जाते हैं ॥
वे मनमानी बस्तु, न पाकर रोजाते हैं ।
हाय हमारे लाल, सुबकते सो जाते हैं ॥१८॥

सिर से संकट—भार, उतार न लेगा कोई ।
मुझ को एक छदाम, उधार न देगा कोई ॥
करुणा—सागर—वीर, कृपा न करेगा कोई ।
हम दुखियों के पेट, न हाय भरेगा कोई ॥१९॥

फूलफूल कर फूल, फली, फल खाने वाले ।
व्यञ्जन, पाक, प्रसाद, यथारुचि पाने वाले ॥
गोरस, आदि अनेक, पुष्ट रस पीने वाले ।
हाय हुये हम शाक, चनों पर जीने वाले ॥२०॥

घर में कुरते कोट, सलूके सिल जाते हैं ।
उजरत के दो चार, टके यों मिल जाते हैं ॥

जब कुछ पैसे हाथ, शाम तक आ जाते हैं।
तब उन का सामान, मँगा कर खा जाते हैं ॥२१॥

लड़के लकड़ी बीन, बीन कर ला देते हैं।
ईंधन भर का काम, अवश्य चला देते हैं॥
वृद्ध चचा जल डोल, घड़ों से भर देते हैं।
माँग माँग कर छाछ, महेरी कर देते हैं ॥२२॥

ठाकुरजी का ठौर, मँगेनू माँग लिया है।
छोटा सा तिरपाल, पुराना टँग लिया है॥
गूदड़ बोरे बेच, उसारा छवा लिया है।
केवल कोठा एक, दुबारा दवा लिया है ॥२३॥

छप्पर में बिन बाँस, घुने ऐरण्ड पड़े हैं।
बरतन का क्या काम, घड़ों के खण्ड पड़े हैं॥
खाट कहाँ दस बीस, फटे से टाट पड़े हैं।
चकिया की भिड़ फोड़, पटीले पाट पड़े हैं ॥२४॥

सरदी का प्रतियोग, न उष्ण-विलास मिलेगा।
गरमी का प्रतिकार, न शीतल-वास मिलेगा॥
घेर रही बरसात, न उत्तम ठौर मिलेगा।
हा ! खँडहर को छोड़, कहाँ घर और मिलेगा ॥२५॥

बादल केहरि-नाद, सुनाते बरस रहे हैं।
चहुँ दिस विद्युद्दृश्य, दौड़ते दरस रहे हैं॥
निगल छत्त के छेद, कीच जल छोड़ रहे हैं।
इन्द्रदेव गढ़ घोर, प्रलय का तोड़ रहे हैं ॥२६॥

दिया जले किस भाँति, तेल को दाम नहीं है ।
अटके मच्छर डाँस, कहीं आराम नहीं है ॥
फिसल पड़े दीवार, यहां सन्देह नहीं है ।
कर दे पनियाँढाल, नहीं तो मेह नहीं है ॥२७॥

बीत गई अब रात, महा-तम दूर हुआ है ।
संकट का कुल हाय, न चकनाचूर हुआ है ॥
आज भयंकर रुद्र, रूप उपवास हुआ है ।
हा ! हम सब का घोर, नरक में वास हुआ है ॥२८॥

लड़ते हैं मत, पन्थ, परस्पर मेल नहीं है ।
सत्य--सनातन--धर्म, कपट का खेल नहीं है ॥
सुबुध-साधु सत्कार, कहीं अवशिष्ट नहीं है ।
ठगियों में मिल माल, उचकना इष्ट नहीं है ॥२९॥

जैसे भारत-भक्त, धर्मधारी मिस्टर हैं ।
थानेदार, वकील, डाक्टर बैरिस्टर हैं ॥
वैसे उन की भांति, प्रतिष्ठा पासकते हैं ।
क्या यों मुझ से रङ्क, कमाई खा सकते हैं ॥३०॥

वैदिक-दल में दान, मान कुछ भी न मिलेगा ।
पौनपाव प्रतिवार, हवन को घी न मिलेगा ॥
मुनि--महिमालङ्कार, महा-गौरव न मिलेगा ।
भोजन, वस्त्र, समेत, गया वैभव न मिलेगा ॥३१॥

बपतिस्मा सकुटुम्ब, बिशप से ले सकता हूँ ।
धन्यवाद प्रभु--गाड, तनय को दे सकता हूँ ॥

धन-गौरव—सम्पन्न, पुरोहित हो सकता हूँ।
पर क्या अपना धर्म, पेट पर खो सकता हूँ॥३२॥

सामाजिक—बल पाय, फूल सा खिल सकता हूँ।
योग-समाधि लगाय, ब्रह्म से मिल सकता हूँ॥
शुद्ध—सनातन—धर्म, ध्यान में धर सकता हूँ।
हा! बिन भोजन वस्त्र, कहो क्या कर सकता हूँ॥३३॥

देश-भक्ति का पुण्य, प्रसाद पचा सकता हूँ।
विज्ञापन से दाम, कमाय बचा सकता हूँ॥
लोलुप-लीला भाँति, भाँति की रच सकता हूँ।
फिर क्या मैं कापट्य, पाप से बच सकता हूँ॥३४॥

जो जगती पर बीज, पाप के बो न सकेगा।
जिस का सत्य-विचार, धर्म को खो न सकेगा॥
जो विधि के विपरीत, कुचाली हो न सकेगा।
वह कंगाल—कुलीन, सदा यों रो न सकेगा॥३५॥

आज अधम-आलस्य, असुर से डरना छोड़ा।
उद्यम को अपनाय, उपाय न करना छोड़ा॥
मन में भय संकोच, अमङ्गल भरना छोड़ा।
अन्न मिला भरपेट, क्षुधातुर मरना छोड़ा॥३६॥

शीत-शत्रु १७

(दोहा)

काढ़े प्राण कुरङ्ग के, जिस प्रकार से बाघ।
वैसा ही रिपु शीत का, अटका उग्र-निदाघ॥१॥

निदाघनिदर्शन १८

(अष्टपदी-छन्द)

बीते दिन बसन्त-ऋतु भागी । गरमी उग्र कोप कर जागी ॥
ऊपर भानु-प्रचण्ड-प्रतापी । भूपर भवके पावक-पापी ॥
आतप,वात मिले रस-रूखे । झाबर, झील,सरोवर सूखे ॥
जिन पूरी नदियों में जल है । उन में भी काँदा दलदल है ॥१॥

अवनी-तल में तीत नहीं है । हिमगिरि पै भी शीत नहीं है ॥
पूरा सुमन-विकास नहीं है । और लहलही घास नहीं है ॥
गरम गरम आँधी आती हैं । सुलभुल बरसाती जाती हैं ॥
झाँखर,झाड़,रगड़ खाते हैं । आग लगे बन जलजाते हैं ॥२॥

लपकें लट लूँ लहराती हैं । जल-तरङ्ग सी थहराती हैं ॥
तृषित-कुरङ्ग वहाँ आते हैं । पर न बूँद वन की पाते हैं ॥
सूख गई सुखदा हरियाली । हा ! रस हीन रसा करडाली ॥
कुतल जवासों के न जले हैं । फूल फूल कर आक फले हैं ॥३॥

पावक-बाण दिवाकर मारे । हा ! बड़वानल फूँक पजारे ॥
खौल उठे नद, सागर सारे । जलते हैं जलजन्तु बिचारे ॥
भानु-कृपा न कढ़े वसुधा से । चन्द्र न शीतल करे सुधा से ॥
धूप हुताशन से क्या कम है । हाय ! चाँदनी रात गरम है ॥४॥

जंगल गरमी से गरमाया । मिलती कहीं न शीतल छाया ॥
घमस घुसी तरु-पुंजों मेंभी । निकले भवक निकुंजों में भी ॥
सुन्दर वन,आराम घने हैं । परमरम्य-प्रासाद बने हैं ॥
सब में उष्ण ब्यार बहती है । घाम, घमस घेरे रहती है ॥५॥

फलने को तरु फूल रहे हैं। पकने को फल झूल रहे हैं॥
पर, जब घोर-घर्म पाते हैं। सब के सब मुरझा जाते हैं॥
हरि, मृग प्यासे पास खड़े हैं। भूले नकुल, भुजङ्ग पड़े हैं॥
कङ्क, शचान, कबूतर, तोते। निरखे एक पेड़ पर सोते॥६॥

विधि! यदि वापी, कूप, न होते। तो क्या हम सब जीवन खोते?॥
पर पानी उन में भी कम है। अब क्या करें नाक में दम है॥
कभी कभी घन रुपजाता है। वृषारूढ़-रवि छुपजाता है॥
जो जल बादल से झड़ता है। तो कुछ काल चैन पड़ता है॥७॥

हरित-बेलि, पोधे मनभाये। बेंगन, काशीफल, फल पाये॥
खरबूज़े, तरबूज़े, ककड़ी। सबने टाँग पिच की पकड़ी॥
इमली के बिधु-बाल-कटारे। आम-अपक्क लुकाट-गुदारे॥
सरस फ़ालसे श्यामल दाने। ये सबने सुख-साधन जाने॥८॥

व्यंजन, ओदन आदि हमारे। पेट न भर सकते हैं सारे॥
गरम रहैं तो कम खाते हैं। रखदें तो बस बुस जाते हैं॥
चन्दन में घनसार घिसाया। पाटल-पुष्प-पराग पिसाया॥
ऐसा कर परिधान बसाये। वेभी बसन विदाहक पाये॥९॥

दीपक ज्योति जहाँ जगती है। चमक चञ्चलासी लगती है॥
व्याकुल हम न वहाँ जाते हैं। जाकर क्या कुछ कर पाते हैं॥
ग्राम ग्राम प्रत्येक नगर में। घूमें घोर-ताप घर घर में॥
रुद्र-रोष दिनकर के मारे। तड़प रहे नारी, नर सारे॥१०॥

भीतर बाहर से जलते हैं। अकुला कर पन्खे झलते हैं॥
स्वेद बहै तन डूब रहे हैं। घबराते मन ऊब रहे हैं॥

काल पड़ा नगरों में जलका। मोल मिले उष्णोदक नलका ॥
वह भी कुछ घंटों बिकता है। आगे तनिक नहीं टिकता है ॥११॥

पान करें पाचक जलजीरा। चखते रहैं फुलाय कतीरा ॥
बरफ़ गलाय छने ठंडाई। औषधि पर न प्यास की पाई ॥
बँगलों में परदे खसके हैं। बार बार रस के चसके हैं ॥
सुखिया सुख-साधन पातेहैं। इतने पर भी अकुलाते हैं ॥१२॥

अकुला कर राजे महाराजे। गिरि शृङ्गों पर जाय विराजे ॥
धूलि उड़ाय प्रजाके धनकी। रक्षा करते हैं तन, मन की ॥
जितने वुकला बैरिस्टर हैं। वीर बहादुर हैं मिस्टर हैं ॥
सुख से कमरों में रहते हैं। गरजें तो गरमी सहते हैं ॥१३॥

गोरे गुरुजन भोग विलासी। बहुधा बने हिमालय बासी ॥
कातिक तक न यहाँ आते हैं। वहीं प्रचुर-वेतन पाते हैं ॥
निर्धन घबराते रहते हैं। घोर-ताप संकट सहते हैं ॥
दिनभर मुड़बोझे ढोते हैं। तब कुछ खा पीकर सोते हैं ॥१४॥

खलियानों पर दायँ चलाना। फिर अनाज, भूसा बरसाना ॥
पूरा तप किसान करते हैं। तोभी उदर नहीं भरते हैं ॥
हलवाई, भुरजी भटियारे। सौनीभगत, लुहार बिचारे ॥
नेक न गरमी से डरते हैं। अपने तन फूँका करते हैं ॥१५॥

हा! बोयलर की आग पजारे। झपटे झाय लपक लूँ मारे ॥
उड़ती भूभल फाँक रहे हैं। जलते इंजिन हाँक रहे हैं ॥
भानु-ताप उपजावे जिसको। वह ज्वाला न जलाये किसको ॥
व्याकुल जीव- समूह निहारे। हाय! हुताशन से सब हारे ॥१६॥

जेठ जगत को जीत रहा है। काल-विदाहक बीत रहा है॥
भवक भवूके मार रहे हैं। हाय हाय हम हार रहे हैं॥
पावक-बाण-प्रचण्ड चले हैं। पञ्च-राज भी बहुत जले हैं॥
बादल को अवलोक रहे हैं। गरमी की गति रोक रहे हैं॥१७॥

जब दिन पावस के आवेंगे। वारि वलाहक बरसावेंगे॥
तब गरमी नरमी पावेगी। कुछ तो ठंडक पड़जावेगी॥
भाट बने कालानल-रविका। ऐसा साहस है किस कविका॥
शंकर कविता हुई न पूरी। जलती सुनती रही अधूरी॥१८॥

पञ्चाग्नि ताप १९

(दोहा)

दिया दिवाली का जला, निरख दिवाला काढ़।
होली धूलि प्रपञ्च में, परख पञ्च की बाढ़॥१॥

दिवालीनहींदिवालाहै २०

[सुभद्रा-छन्द]

हुआ दिवस का अन्त, अस्त आदित्य उजाला है।
असित–अमा की रात, मन्द आभा उडु–माला है।
चन्द्र-मण्डल भी काला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥१॥

घोर तिमिर ने घेर, रतोंधा रङ्ग जमाया है।
अन्ध अकड़ में तेज, हीन अन्धेर समाया है॥
न अगुआ आखोंवाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥२॥

उड़ते फिरें उलूक, उजाड़ू गीदड़ रोते हैं।
बिचरें बञ्चक चोर, पड़े घरवाले सोते हैं॥
न किस का टूटा ताला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥३॥

उमग मोहिनी-शक्ति, सुरों को सुधा पिलाती है।
असुरों को विष-रूप, रसीले-खेल खिलाती है॥
झुका अँखियों का झाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥४॥

सुन शतरंजीशाह, बिसात लुटी क्या छोड़ा है।
रहे न फ़ील वज़ीर, न प्यादे बचे न घोड़ा है॥
न जंगी ऊँट जुँगाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥५॥

सज्जन, सभ्य, सुजान, दरिद्र न पूजे जाते हैं।
हा! मद-मत्त अजान, प्रतिष्ठा, पदवी पाते हैं॥
सबल रानी का साला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥६॥

गरमी से अकुलाय, महा—ज्ञानी गरमाते हैं।
सरदी से सकुचाय, नहीं नेता नरमाते हैं॥
घरेलू भेद उबाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥७॥

मतवाले मत, पन्थ, मनाने वाले लड़ते हैं।
बैर, बिरोध बढ़ाय, गर्व—गड्ढे में पड़ते हैं॥
अबिद्या ने घर घाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥८॥

जिन के अर्थ अनेक, खरे खोटे होसकते हैं।
क्या वे जटिल-कुतंत्र, पराविद्या बोसकते हैं॥
कुमति-लूता का जाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥ ६॥

सबल-बड़ों के बूट, बड़ाई कहाँ न पाते हैं।
वैदिक-दर्प दबोच, वेदियों पै चढ़ जाते हैं॥
डुबा धी नाम उछाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥ १०॥

गुरु कुलियों को दान, अकिञ्चन भी देआते हैं।
पर कंगाल-कुमार, न विद्या पढ़ने पाते हैं॥
धनी लड़कों की शाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥ ११॥

जननी, पितु की पुत्र, न पूरी पूजा करता है।
अपने ही रस-रङ्ग, भरे भोगों पै मरता है॥
सुमित्रा-बनिता-बाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥ १२॥

ललना ज्ञान बिहीन, अविद्या से दुख पाती हैं।
हा हा नरक समान, घरों में जन्म बिताती हैं॥
महा-माया-बिकराला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥ १३॥

बाधक-बाल-विवाह, कुमारों का बल खोता है।
अमर-कुलों में हाय, वंश-घाती बिष बोता है॥

बुरा—काकोदर पाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥ १४ ॥

अक्षत—योनि अनेक, बालिका बिधवा होती हैं।
पामर—पण्डित पञ्च, पिशाचों को सब रोती हैं ॥
न गौना हुआ न चाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥ १५ ॥

रण्डा मदन—बिलास, नकीलों को दिखलाती हैं।
करती हैं व्यभिचार, अधूरे—गर्भ गिराती हैं ॥
अछूता धर्म—छिनाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥ १६ ॥

केशकल्प कर वृद्ध, बालिका—कन्या बरते हैं।
कर मनमाने पाप, न अत्याचारी डरते हैं ॥
जरा—जारत्व निकाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥ १७ ॥

राजा, धनिक—उदार, मस्त जीने पै मरते हैं।
गोरे—गुरु अपनाय, प्रशंसा, पूजा करते हैं ॥
यही तो मान—मसाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥ १८ ॥

ठोस—ठसक के ठाठ, ठिकानों पै यों लगते हैं।
उन को खेल खिलाय, पढ़े—पाखंडी ठगते हैं ॥
बड़ाई जिन की ख़ाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥ १९ ॥

आमिष, चरबी आदि, घने नारी, नर खाते हैं।
पशु, पक्षी दिन, रात, कटाकट काटे जाते हैं॥
बहा शोणित का नाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥ २०॥

गाँजा, चरस, चढ़ाय, जले जड़ चाँडू से सारे।
पियें मदकची भंग, अफ़ीमी पीनक ने मारे॥
चढ़ी सर्वोपरि हाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥२१॥

गणिका, भडुआ, भाँड़, भटेले मौज उड़ाते हैं।
अवढरदानी सेठ, द्रव्य से पिण्ड छुड़ाते हैं॥
चढ़ी लालों पर ला ला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥२२॥

सेठ--सदुद्यम--शील, पड़े माला सटकाते हैं।
अनघ दुअन्नी तीन, सैंकड़ा व्याज उड़ाते हैं॥
कहो क्या कष्ट कसाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥२३॥

बैरिस्टर, मुख़्तार, वकीलों का धन बन्दा है।
नैतिक–तर्क–बिलास, न निर्धनता का फन्दा है॥
कमाऊ झगला या ला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥२४॥

थाना–पति–कुल–बीर, न दाता से भी डरते हैं।
धन, जीवन की खैर, हमारी रक्षा करते हैं॥

प्रतापी रौब बिठाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥२५॥

पटवारी प्रण रोप, किसानों का जी भरते हैं।
मासिक से अतिरिक्त, रसीला–चारा चरते हैं ॥
हरा प्रत्येक निवाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥२६॥

ठग विज्ञापन बाँट, ठगीका रंग जमाते हैं।
अनुचित सौदा बेच, बेच कल्दार कमाते हैं ॥
कपट साँचे में ढाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥२७॥

उन्नति के अवतार, मिलों का मान बढ़ाते हैं।
चरबी चुपड़ें चक्र, चक्र पै चाम चढ़ाते हैं ॥
अहिंसा का प्रण पाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥२८॥

रहते थे अविकार, अजी जो सुख से जीते थे।
दधि,माखन,घी,खाय, प्रतापी गोरस पीते थे ॥
उन्हें हा! छाछ रसाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥२९॥

सम्पति रही न पास, दरिद्रासुर ने घेरे हैं।
बन्धन के सब ओर, पड़े फन्दे बहुतेरे हैं ॥
लगा बरछी पर भाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥३०॥

विचरें मूढ़-विरक्त, अविद्या को अपनाते हैं।
ब्रह्म बने लघु-लोग, कुयोगी पाप कमाते हैं॥
वृथा माला, मृगछाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥३१॥

सुर तेतीस करोड़, मिले पर तोभी थोड़े हैं।
पुजते जड़, चैतन्य, मरों के पिण्ड न छोड़े हैं॥
+पुजापा कहाँ न डाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥३२॥

घेर घेर पुर ग्राम, घने घर सूने कर डाले।
करते मंत्र-प्रयोग, न तोभी मृत्युंजय वाले॥
किसी ने प्लेग न टाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥३३॥

त्राण अनेक अनाथ, गाड--नन्दन से पाते हैं।
कितने ही कुल-वीर, रसूलिल्लाह मनाते हैं॥
हमारा ह्रास निराला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥३४॥

दयानन्द-मुनि-राज, मिले थे शंकर के प्यारे।
वेभी कर उपदेश, हो गये भारत से न्यारे॥
जलावा रजनी ज्वाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥३५॥

+घर, घूरा, किवाड़, चौकठ, बरतन, कपड़े, पेड़ पत्थर, धातु-कुम्र आदि २ सबोंपर पुजापे चढ़ाये जाते हैं।

अन्धेरखाता २१

(साखी)

पञ्च का लेखा दिया सा, दमदमाता देख लो ।
आग सा अन्धेर खाता, धकधकाता देख लो ॥१॥

(पञ्चोद्धार-गीत)

इस अन्धेर में रे,
अन्धी चालाकी चमका लो ॥टेक॥

भानु, चन्द्रमा, तारागण से, गुणियों को धमका लो ।
गरजो रे बकवादी मेघो, छल-कौंधा दमका लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥

मोह-अभ्र से ज्ञान-सूर्य का, प्रातिभ-दृश्य दुरा लो ।
विद्या-ज्योति विहीन जड़ों का, सुख-सर्वस्व चुरा लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥

धर्माधार-महामण्डल में, अपनी जीत जता लो ।
ब्रह्म-वीर श्री दयानन्द को, हारा शत्रु बता लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥

भिन्न मतों के वेष निराले, पन्थ अनेक बना लो ।
धर्म-सनातन के द्वारा यों, कुनबा घेर घना लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥

मन में श्रद्धा बुद्धदेव की, धींग धसोड़ धसा लो ।
मौखिक शब्दों में शंकर का, प्रेम-पवित्र बसा लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥

झूँठा सब संसार बता दो, सत्य नाम अपना लो ।
मायावाद सिद्ध करने को, रज्जु, सर्प, सपना लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥

"सोहमस्मि" से वेद विरोधी, मायिक मंत्र सिखा लो।
परमतत्व भूले जीवों को, ब्रह्म-स्वरूप दिखा लो॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

कूट-कल्पना के प्रवाह में, वाद, विवाद बहा लो।
कर्महीन केवल बातों से, जीवनमुक्त कहा लो॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

निर्विकार-अद्वैत—एक में, द्वैत-विकार मिला लो।
मायामय-मिथ्या-प्रपञ्च के, सब को खेल खिला लो॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

पौराणिक-देवों के दल को, अपनी ओर झुका लो।
भक्ति-भाव-लीला में उन के, खोट, कलङ्क लुका लो॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

भूत, भूतनी, प्रेत, मसानी, मियाँ, मदार, मना लो।
ठीक ठिकानों पै ठगई के, जाल, वितान तना लो॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

चेतन के पंजे जड़ता पै, गाल बजाय जमा लो।
पिण्डी, प्रतिमा पूज, पुजा लो, वित्त--विशुद्ध कमा लो॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

भोले भावुक--यजमानों को, डाँट डराय हिला लो।
मारो माल मरे पितरों को, सोदकपिण्ड दिला लो॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

उमगे लीला अवतारों की, मानव रास रचा लो।
छैल छोकड़ों की छवि देखो, उद्धत--नाच नचा लो॥

इ० अं० अं० चा० चमका लो॥
पञ्च मकारी कौल--चक्र में, परमप्रसादी पा लो।

श्री जगदीश-पुरी में जा के, सब की जूठन खा लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥
राम नाम लेकर पापों के, भार अतोल उठा लो ।
हरि भक्तो! हलके होने को, सुरसरिता में न्हा लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥
जन्मकुण्डली काढ़ जाल की, दिव्य आग दहका लो ।
खेट खरे, खोटे बतला के, धनियों को बहका लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ।
साधु कहालो भण्डभीड़ में, सण्ड-समूह सटा लो ।
रोट खाय पाखण्ड-फ़ण्ड के, लण्ठो! लहर पटा लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥
कामदेवता के अङ्कुश में, लोह-कड़ा लटका लो ।
नङ्गनाच रचलो बाबाजी, चिमटे को चटका लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥
मुंज-मेखला बाँध गले में, कठकण्ठे लटका लो ।
मादकता की साधकता में, योग-ध्यान अटका लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥
अपने अन्यायी जीवन की, धुँधली ज्योति जगा लो ।
निन्दा करो महापुरुषों की, ठगलो और ठगा लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥
भारत की भावी उन्नति का, मण्ण से पान चबा लो ।
चन्दा ले कर धर्म कोष को, सब के दाम दबा लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ।
हाँ उपदेशामृत पीने को, श्रोता वदन उबा लो ।
शुद्ध सत्य-सागर में सारे, भ्रम, सन्देह डुबा लो ॥

इ०अं०अं०चा०चमका लो ॥

माता,पिता और गुरु पत्नी, सब से शुभ-शिक्षा लो।
जामदग्न्य, प्रह्लाद, चन्द्र की, भाँति सुयश-भिक्षा लो॥
इ०अं०अं०चा० चमका लो॥

गरमी, नरमी की माया को, डौल बिगाड़ डुला लो।
कूदफाँद जातीय सभा का, उन्नत-काल बुला लो॥
इ०अं०अं०चा० चमका लो॥

पाय चाकरी धर्म कमालो, खाकर घूँस पचा लो।
मौज उड़ालो मासिक से भी, तिगुना वित्त बचा लो॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

देशी उद्यम की उन्नति का, गहरा रंग रँगा लो।
अन्न विदेशों को भिजवा दो, काठ कबाड़ मँगा लो॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

मूल ब्याज,की मार धाड़ से, ऋणियों को पटका लो।
ध्यान धरो पौढ़े ठाकुर का, कर माला सटका लो॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

लड़की लड़कों के ब्याहों में, धन की धूलि उड़ा लो।
नाक न कटने दो,निन्दा से, कुल का पिण्ड छुड़ा लो॥
इ०अं०अं०चा०चमका लो॥

बच्ची,बच्चों मिल मण्डप में, बैठो मन बहला लो।
गौरि,गिरीश,रोहिणी,चन्दा, कन्या,वर, कहला लो॥
इ०अं०अं०चा० चमका लो॥

पीले हाथ करो दुहिता के, दस तोड़े गिनवा लो।
बरनी के बाबा से वर पै, नाक चने बिनवा लो॥
इ०अं०अं०चा०चमका लो॥

विद्या-हीन-अंगना-गण के, उन्नत-अंग नवा लो ।
पिसवा लो, खाना पकवा लो, बकने गीत गवा लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥
विधवा-दल के दुष्कर्मों से, घर का मान घटा लो ।
हत्यारे बनकर पञ्चों में, कुल की नाक कटा लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥
खेलो जुआ हार धन, दारा, मार कुयश की खा लो ।
नल की पदवी से भी आगे, धर्मपुत्र-पद पा लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥
रंडी पर चोटी तक वारो, मुतफुल्ली उड़वा लो ।
खैरूलमाकरीन से खाँजी, मक्र-छूत छुड़वा लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥
मदिरा, ताड़ी, भंग, कसूमा, पीलो अमल खिला लो ।
चूँसो धुँआँ चरस, गाँजे में, चाडू, मदक मिला लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥
सोंध सड़ेगुड़ में तम्बाकू, घान घने कुटवा लो ।
आदर मान बढ़े हुक्के का, भारत को लुटवा लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥
होली के हुल्लड़ में रसिको, रस के साज सजा लो ।
हिन्दूपन के सभ्यभाव का, ढिल्लड़ ढोल बजा लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥
वैदिक-वीरो ! अन्ध-यूथ में, तुम भी टाँग अड़ा लो ।
बाँट बड़ाई का बढ़िया से, बढ़िया और बढ़ा लो ॥
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥
माँगो गुरुकुल के मेलों में, मंगल-कोश बढ़ा लो ।

भिक्षा को उलटी लटका दो, शुल्कद-शिष्य पढ़ा लो ॥
इ०अं०अं०चा०चमका लो ॥
कुल–वीरों को पाठ-पछाड़ू, पट्ठुओं से पढ़वा लो ।
ग्रन्थों में हुरदङ्ग, पोप से, प्रेम–शब्द बढ़वा लो ॥
इ०अं०अं०चा०चमका लो ॥
धीरो! व्याह करो विधवा का, धर्म–सुधा बरसा लो ।
फिर दे दण्ड धींग-पञ्चों को, पाप–दृश्य दरसा लो ॥
इ०अं०अं०चा० चमका लो ॥
युक्ति-वाद से छद्म-वाद की, खाल खींच कढ़वा लो ।
पै संगीत और कविता पै, धर्म–दोष मढ़वा लो ॥
इ०अं०अं०चा० चमका लो ॥
ढोल, चिकारे की मिल्लत में, करतालें खड़का लो ।
राग, रागनी, ताल, स्वरों को, तोड़ो! तन फड़का लो ॥
इ०अं०अं०चा० चमका लो ॥
वेदों की वेदी पर चढ़ लो, ऊल ऊल कर गा लो ।
कोरी कर तालीं पिटवा लो, धोरी धिक धिक धा लो ॥
इ०अं०अं०चा०चमका लो ॥
तुक्कड़ लोगो! तुकबन्दी पै, हित का हाथ फिरा लो ।
श्री कविता देवी के सिर से, मान–किरीट गिरा लो ॥
इ०अं०अं०चा०चमका लो ॥
हाय! अजानों के दंगल में, झूँठी ठसक ठँसा लो ।
सिद्ध प्रतापी कविराजों पै, हँस लो और हँसा लो ॥
इ०अं०अं०चा०चमका लो ॥
वक्ता जी शुभ-कर्म-कथाएँ, बस हाँमी भरवा लो ।
पर देखें सब श्रोताओं से, पञ्चयज्ञ करवा लो ॥

इ०अं०अं०चा०चमका लो ॥

शङ्कर जी पहले पापों का, पलटा आप चुका लो ।
औरों से क्यों अटक रहे हो, अपनी ओर झुका लो ॥

इ०अं०अं०चा०चमका लो ॥

पड़ी बोली में पञ्च प्रलाप २२

(दोहा)

बस बिझे कीनी हुई, झट्ट सुनलई बात ।
जैबिल्ले भकुआ भकें, बढ़पतिया की भात ॥१॥

पञ्च फैसला २३

(षट्पदी-छन्द)

हिल मिल पोंगा-पञ्च, कतैअत निच्चे जाने ।
हम हिन्दु न असत्त, आरिया मत को माने ॥
चों बिसार कुल-रीत, बिगारें गैल पुरानी ।
ठाकुर पकरें बाँय, करें रच्छा ठकुरानी ॥
झाँ मन मानी माया मिलै, भाँ खातर भरपूर हो ।
तू छेकौ संकर जात ने, बोल "नमसते" दूर हो ॥१॥

विचित्रोल्लास की विचित्रता २४

(दोहा)

पञ्चराज के तेज का, जिस में बसे बिलास ।
पूरा होसकता नहीं, वह विचित्र उल्लास ॥१॥
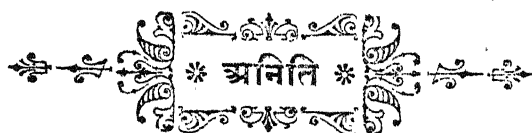
उपसंहार

अर्थात् पूर्वोद्भास का अन्तिम अंश

काल की चाल (दोहा)

जाता है टिकता नहीं, अस्थिर काल-कराल।
देखो! इस की दौड़ में, चुके न किसकी चाल ॥ १ ॥

जीवन-काल

(गीत)

जीवन बीत रहा अनमोल,
इस को कौन रोक सकता है ॥ टेक ॥

चलता काल टिके कब हाय, सटके सबको नाच नचाय,
लपका लपके किसे न खाय, अस्थिर नेक नहीं थकता है।
जी० बी० र० अ० इ० कौ० रो० सकता है ॥

हायन, मास, पक्ष, सित, श्याम, तैथिक-मान, रात, दिन, याम,
भागे घटिका, पल, अविराम, क्षण का भी न पैर पकता है ॥
जी० बी० र० अ० इ० कौ० रो० सकता है ॥

सरके वर्तमान बन भूत, गति का गहे अनागत सूत,
त्रिकली-द्रुतगामी-रवि-दूत, किस की छाक नहीं छकता है।
जी० बी० र० अ० इ० कौ० रो० सकता है ॥

सब जग दौड़े इस के साथ, लगता हा! न बिपल भी हाथ,
सुनलो रङ्क और नरनाथ, शङ्कर बृथा नहीं बकता है ॥
जी० बी० र० अ० इ० कौ० रो० सकता है ॥ १ ॥

काल-कौतुक (दोहा)

तील तनावों से तना, जिस का अस्थिर-जाल।
हाँक रहा संसार को, अविरामी वह काल ॥ १ ॥

काल का वार्षिक-विलास

(सुभद्रा-छन्द)

सविता के सब ओर, महीमाता चकराती है।
घूम घूम दिन, रात, महीना, वर्ष, बनाती है॥
कल्प लों अन्त न आता है।
हा! इस अस्थिर-काल, चक्र में जीवन जाता है॥ १॥

(चैत्र)

छोड़ छदन-प्राचीन, नये-दल वृक्षों ने धारे।
देख! विनाश, विकाश, रूप, रूपक न्यारे न्यारे॥
दुरङ्गी चैत दिखाता है।
हा! इस अस्थिर-काल, चक्र में जीवन जाता है॥ २॥

(वैशाख)

सूख गये सब खेत, सुखादी सारी हरियाली।
गहरी तीत निचोड़, मेदिनी रूखी कर डाली॥
धूलि वैशाख उड़ाता है।
हा! इस अस्थिर-काल, चक्र में जीवन जाता है॥ ३॥

(ज्येष्ठ)

झील, सरोवर फूँक, पजारे नदियों के सोते।
व्याकुल फिरें कुरङ्ग, प्राण मृगतृष्णा पै खोते॥
जलों को जेठ जलाता है।
हा! इस अस्थिर-काल, चक्र में जीवन जाता है॥ ४॥

(आषाढ़)

दामिनि को दमकाय, दहाड़े धाराधर धाये।
मारुत ने झकझोर, झुकाये झूमे झर लाये॥
लगी आषाढ़ बुझाता है।
हा! इस अस्थिर-काल, चक्र में जीवन जाता है॥ ५॥

(श्रावण)

गुल्म, लता, तरु-पुञ्ज, अनूठे-दृश्य दिखाते हैं ।
बरसे मेह विहङ्ग, विलासी मङ्गल गाते हैं ॥
झुलाता श्रावण भाता है ।
हा ! इस अस्थिर—काल, चक्र में जीवन जाता है ॥ ६ ॥

(भाद्रपद)

उपजे जन्तु अनेक, किनारे झील, नदी, नाले ।
भेद मिटा दिन, रात, एक से दोनों कर डाले ॥
मघा भादों बरसाता है ।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥ ७ ॥

(आश्विन)

फूल गये सर, काँस, बुढ़ापा पावस पै छाया ।
खिलने लगी कपास, शीत का शत्रु हाथ आया ॥
कृषी को क्कार पकाता है ।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥ ८ ॥

(कार्तिक)

शुद्ध हुये जल, वायु, खुला आकाश खिले तारे ।
बोये विविध-अनाज, उगे अङ्कुर प्यारे प्यारे ॥
दिवाली कातिक लाता है ।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥ ९ ॥

(मार्गशीर्ष)

शीतल बहै समीर, सबों को शीत सताता है ।
हायन भर का भेद, जिसे दैवज्ञ बताता है ॥
अग्रहायन से पाता है ।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥ १० ॥

(पौष)

टपके ओस, तुषार, पड़े जमजाता है पानी ।
कट कट बाजें दाँत, मरी जल शूरों की नानी ॥

पुजारी पौष न न्हाता है ।
हा! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥११॥

(माघ)

हुआ मकर का अन्त, घटी सरदी अम्बा बौरे ।
विकसे सुन्दर-फूल, अरुण, नीले, पीले धौरे ॥
माघ मधु को जन्माता है ।
हा! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥१२॥

(फाल्गुन)

खेत पके अब आँख, ईश ने उन्नति की खोली ।
अन्न मिला भर पूर, प्रजा के मन मानी होली ॥
फाल्गुन फाग खिलाता है ।
हा! इस अस्थिर काल चक्र में जीवन जाता है ॥१३॥

(अधिमास)

विधु से इन का अब्द, बड़ाई इतनी लेता है ।
जिस का तिगुना मान, मास पूरा कर देता है ॥
वही तो लोंद कहाता है ।
हा! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवनजाता है ॥१४॥

(कवि का पछतावा)

किया न प्रभु से मेल, करेगा क्या मन के चीते ।
अबलों बावन वर्ष, बृथा शङ्कर तेरे बीते ॥
न पापों पै पछताता है ।
हा! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥१५॥

पूर्णोद्भासका भावार्थ (दोहा)

अन्धकार-अन्धेर का, अब न रहैगा पास ।
राग रत्न--का पारखी, परख ! पूर्ण उद्भास ॥१॥

वाचक वृन्द ! पूर्णोद्भास की पूर्णता द्वितीया वृत्ति में देखेंगे ।

सङ्गीत

अर्थात्

(नादविद्या)

नादेन व्यञ्जते वर्णः, पदंवर्णात्पदाद्वचः ।
वचसो व्यवहारोऽयं, नादाधीनं मतंजगत् ॥

(सङ्गीत के मुख्य अङ्ग)

साहित्य १ स्वर २ ताल ३ रस ४ ।

(ध्वनि)

मन्द्र-ध्वनि १=जो नाभि से हृदय तक सञ्चार करती है ।

मध्य-ध्वनि २=जो हृदय से कण्ठ तक संचार करती है ।

तार-ध्वनि ३=जो कण्ठ से कपाल तक संचार करती है ।

(स्वर)

षड्ज १ ऋषभ २ गान्धार ३ मध्यम ४ पञ्चम ५ धैवत ६ निषाद ७ ।

(स्वरभेद)

आरोही १=षड्ज से ऊपर की ओर टीप तक जानेवाला (स्वर)
यथा, स-रि-ग-म-प-ध-नि ।

अवरोही २=टीप से षड्ज की ओर उलटा उतरनेवाला (स्वर)
यथा, नि-ध-प-म-ग-रि-स ।

(ग्राम)

उदारा १ (षड्ज) मुदारा २ (मध्यम) तारा ३ (गान्धार)

(मूर्छना)

उत्तरमन्दा १ रञ्जनी २ उत्तरायता ३ सत्स्वरा ४ कृत्या ५ धारिका ६ अश्वक्रान्ता ७ सौवीरा ८ अभिरुद्गता ९ हारिनासवा १० इला ११ कलोपनता १२ शुद्धमध्यमा १३ भोगी १४ ऋषिका १५ पौरवी १६ नन्दा १७ सुमुखी १८ सुखादिचित्रा १९ रोहिणी २० आलापी २१ ।

(आलाप)

धाम्न १=आलाप के आदि में आनेवाला स्वर ।

न्यास २=आलाप के अन्त में आनेवाला स्वर ।

मूर्छना ३=आलाप को विश्राम देकर प्रवाहित करनेवाला स्वर ।

अंश ४=आलाप में बारम्बार निकलनेवाला स्वर ।

पक्कस्वरूप ५=आलापमें स्पन्दन (गिटकिरी) से निकलनेवाला स्वर

(रागजाति)

औडव १=जो राग पाँच स्वरों में गाया जाता है। स-रि-ग-म-प

षाडव २=जो राग छै स्वरों में गाया जाता है। स-रि-ग-म-प-ध

सम्पूर्ण ३=जो राग सातों स्वरोंमें गाया जाता है। स-रि-ग-म-प-ध-नि

(राग)

भैरव १ मालकोस २ हिण्डोल ३ दीपक ४ श्री ५ मेघ ६ ।

(रागिणी)

(भैरव राग की रागिणी)

भैरवी १ वैराड़ी २ मधुमाधवी ३ सिन्धवी ४ बङ्गाली ५ ।

(मालकोस राग की रागिणी)

टोड़ी १ गौरी २ गुनकली ३ खम्भावती ४ कुकुभ ५ ।

(हिण्डोल रागकी रागिणी)

रामकली १ देशाख २ ललित ३ विलावल ४ पटुमञ्जरी ५ ।

(दीपक राग की रागिणी)

देशी १ कामोदी २ नट ३ केदारा ४ कान्हड़ा ५ ।

(श्री रागकी रागिणी)

मालव १ धनाश्री २ वसन्त ३ मालश्री ४ आसावरी ५ ।

(मेघ राग की रागिणी)

टङ्क १ मलारी २ दक्षिणगूजरी ३ भूपाली ४ देशकारी । ५ ।

(बाजे)

तत १=वीणा के समान तारवाले बाजे। (१)
अनुवद्य २=पखावज के समान चर्मवाले बाजे। (१)
सुखिर ३=बाँसुरी के समान फूँक से बजनेवाले बाजे। (१)
घन ४=मंजीरा के समान ठोकर से बजनेवाले बाजे। (½)

(गायन-दोष)

मुख को अधिक फाड़ना १ दांत घिसना २ गाल फुलाना ३ आंखें मींचना ४ अति बेग से गाना ५ विकराल स्वर ६ काक स्वर ७ स्वरभङ्ग ८ बेताला ९ लय, तान हीन १० आदि आदि इस प्रकार अनेक गुण दोषों के ज्ञाता संगीत–विद्या–विशारद सुमधुर गायकगण गाते थे, गाते हैं और गावेंगे, परन्तु आज कल बहुधा तुकड़ों की गढ़न्त के गितक्कड़ अजान लोगों से तालियां पिटवा कर अपने को गायनाचार्य मान रहे हैं (धन्य उनका साहस) परमात्मन् ! इस "अनुराग-रत्न" को अच्छे गवैया गावें, अभिज्ञ श्रोता सुनें, विचारशील पुरुष पढ़ें और समझें यही प्रार्थना है।

सेवक विनीत,

नाथूराम शंकर शर्मा (शंकर,)

हरदुआगंज, (अलीगढ़)।

अनुरागरत्न का शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४	३	महदुद्योत	बृहदुद्योत	१३२	१०	बुलवाय	बुलाय
२६	१५	नलिप	निर्लेप	१७२	६	बाम	नाम
३०	१७	विश्वक	विश्वका	१८६	१३	उलें	ऊलें
३६	१६	उज्वल	उज्ज्वल	१६०	१३	डेड़	डेढ़
४०	१२	दम्म	दम्भ	२११	२२	धुव	ध्रुव
८८	५	एरमधर्म	परमधर्म	२१३	२२	उस	जिस
१०४	६	महज्जन	महाजन	२२६	१८	विहार	विलास
१०४	२१	उलरहे	ऊलरहे	२३१	७	मेरे	पाये
१२४	२०	तन	तज	२३५	७	निगला	गटका
१३०	११	विटिप	विटप	२४७	१६	जमया	जमाया

(भद्रोद्गास पृष्ठ १०८)

हेत्वाभास का उपहास ५८ (गीत)

इस गीत का दूसरा चरण छपने से रह गया है, वह यों है :—

भुवनन्दा में न्हाय देह के, मल को धो सकता है।
सत्य बिना मन के पापों को, कौन डुबो सकता है॥
सा० ध० क० न होसकता है॥

(विचित्रोद्गास पृष्ठ २०६)

(पञ्चचामर वृत्त)

इस वृत्त के ऊपर का शीर्षक नहीं छपा, वह यों है:—

पञ्चामृत-प्रवाह १

संशोधन ठीक न होने के कारण बहुधा ! ऐसे चिन्हों के स्थानों में ? ऐसे चिन्ह छप गये हैं, पाठक क्षमा करें। (प्रकाशक)